ओ३म्

कन्योपनयन-विधि

योपनयन-निषेध का खण्डन)

महाराणीशंकर शर्मा

ओ३म्

कन्योपनयन-विधि

(कन्योपनयन-निषेध का खण्डन)

[दयानन्द-बलिदान-शताब्दी संस्करण]
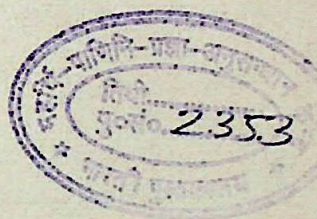
महाराणीशंकर शर्मा

प्रकाशक—
युधिष्ठिर मीमांसक
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) १३१०२१

वितरकः—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)
पिन १३१०२१

प्रथम संस्करण १०००
नवम्बर, १९८३ सं० २०४०
मूल्य ४-००
सजिल्द ६-००

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

प्रकाशकीय

सन् १९५९-६० में जब मैं महर्षि दयानन्द स्मारक महालय टंकारा में कार्य करता था उस समय श्री इन्दुलाल मोतीलाल भाई पटेल भी वहीं कार्य करते थे। लगभग दो वर्ष तक इन के साथ मेरा सम्पर्क रहा। मेरे वहां से चले आने पर तात्कालिक परिस्थितिवश इन्होंने भी वहां का कार्य छोड़ दिया। तत्पश्चात् आप अनेक वर्षों से 'बृहत् सौराष्ट्र आर्यप्रादेशिक सभा द्वारा संचालित 'वेदमन्दिर सायला' (जिला सुरेन्द्रनगर) में कार्य कर रहे हैं। आप उत्साही कार्यकर्त्ता हैं, स्वाध्यायशील हैं। मेरे साथ श्री इन्दु भाई का बराबर पत्र-व्यवहार रहता है। समय-समय पर गुजराती भाषा में छपे पुराने ग्रन्थों की सूचना देते रहते हैं।

सितम्बर मास के अन्त में आपने श्री पं० महाराणीशंकर शर्मा कृत कन्योपनयन-विधि नाम की सं० १९७१ वि० सन् १९१५ में छपी पुस्तक भेजी। इस पुस्तक में 'कन्योपनयन-निषेध' नामक पुस्तक का सटीक खण्डन किया है। कन्योपनयन के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाण दिये हैं।

पुस्तक में रखकर भेजी गई एक छोटी सी चिट में गुजराती में लिखा है—

"सरदारसिंह राणा ना गाम कंथारिया तालुको लींबडीना ठाकर कुटुंबना ब्राह्मण श्रेष्ठ पं० हरिशंकर विद्यार्थी अने चन्द्रशंकर ठाकर बंधुद्वयना पुस्तकालयनी प्रत फरी छपाय तो सारूं लेखक नो टुंक परिचय आर्यसमाज मुम्बई ना इतिहासमां छे"।

अर्थात् श्री सरदारसिंह राणा के ग्राम कंथारिया, तालुका लींबडी के ठाकर कुटुम्ब के ब्राह्मण श्रेष्ठ पं० हरिशंकर विद्यार्थी और चन्द्रशंकर ठाकर नामक दो बन्धुओं के पुस्तकालय की प्रति है। इसे फिर छपाया जाये तो अच्छा हो। लेखक का थोड़ा सा परिचय 'आर्यसमाज मुम्बई के इतिहास में है।

आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई के सन् १९३२ में छपे इतिहास में जो चार लाइनों में परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

"पण्डित महाराणीशंकर शर्मा से कोई अपरिचित नहीं है। इन्होंने सद्गत् (स्वर्गगत) पण्डित (बालकृष्ण शर्मा) जी के पास बम्बई में रह कर व्याकरणादि का अभ्यास करने के पश्चात् हरिद्वार-कांगड़ी जाकर अपना विशेष अभ्यास करके भिन्न-भिन्न स्थानों में समाज-सेवा के क्षेत्र में रह कर उत्तम कार्य कर रहे हैं।"

पुस्तक प्राप्त होने पर उसे तत्काल छापने का विचार नहीं था, परन्तु दयानन्द के भक्त एक पुराने विद्वान् की कृति को 'दयानन्द-बलिदान-शताब्दी' पर प्रकाशित करना उचित होगा, ऐसा विचार आते ही स्वल्प समय में ही छपवा कर प्रकाशित कर रहा हूं। इसी कारण श्री पण्डित महाराणीशंकर जी के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। इस का खेद है।

ग्रन्थकार की मातृभाषा गुजराती है। गुरुकुल कांगड़ी आदि में रहने के कारण भाषा पर्याप्त शुद्ध है। कुछ स्थानों पर भाषा की अशुद्धियां थीं, उन्हें हमने ठीक कर दिया है।

पुस्तक के मुख पृष्ठ (टाइटल) के चतुर्थ पृष्ठ पर श्री पं० महाराणी शंकर शर्मा की निम्न पुस्तकों की सूची छपी है—

शंकर-संगीतावली—ईश्वर और स्वदेश की सच्ची भक्ति से भरपूर सत्य, आत्मिक-वृत्ति और वैदिक धर्म, कर्तव्य में अपूर्व उत्तेजना देनेहारी वीररस-प्रधान कविताएं ॥ मूल्य १० आना

सती संगीतावली—स्त्री-जाति में पूर्ण पतिव्रतधर्म तथा देश, कौम और कुटुम्ब की और सच्चा धर्म और कर्त्तव्य-निष्ठा तथा स्त्री-अधिकार जतलानेवाली कविताएं ॥ मूल्य १० आना

दयानन्द-आख्यान (उत्तरार्थ)—गुरुदक्षिणा की प्रतिज्ञा से लेकर धर्म की खातिर प्राणाहुति तक महर्षि स्वामी श्री दयानन्द का अद्भुत जीवन-व्रत जतलाता गद्य-पद्यात्मक देव-कीर्तन ॥ मूल्य ३ आना

नवीनयुग के युवान-स्त्री-पुरुष—किस आदर्श के होने चाहिये, उसका रसभरी अलंकारी भाषा में भव्य विचार ॥ मूल्य ३ आना

बुद्ध-आख्यान (पूर्वार्ध)—यतीश्वर महात्मा बुद्धदेव के जन्म से लेकर गृहत्याग पर्यन्त शान्त और करुणरसोत्पादक अपूर्व जीवन-कीर्तन छप रहा है। मूल्य ३ आना

समाज—जगत्प्रसिद्ध कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बंगला 'समाज' पर से गुजराती भाषान्तर छप रहा है ॥ मूल्य ६ आना

प्रस्तुत 'कन्योपनयन-विधि' पुस्तक को यदि पौराणिक विद्वानों तक 'उपहार' रूप में पहुंचाया जाये तो बहुत उत्तम कार्य होगा। इस कार्य के लिये हम प्रचारार्थ आधे मूल्य में यह पुस्तक देंगे। यदि कोई महानुभाव चाहेंगे तो जितनी प्रतियां वे प्रचारार्थ भेंट करना चाहें, उन को योग्य व्यक्तियों तक पहुंचाने का प्रवन्ध भी कर सकते हैं, परन्तु मार्गव्यय भी देना होगा।

वस्तुतः इस पुस्तक को प्रकाशित करने के दो ही प्रयोजन हैं। एक—दिवंगत आर्य विद्वान् की कृति को प्रकाश में लाना, और दूसरा—पौराणिक विद्वानों तक कन्योपनयन विषयक आर्ष मन्तव्य को पहुंचाना।

आश्विन पूर्णिमा — विद्वज्जन-सेवक

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ — युधिष्ठिर मीमांसक

प्रास्ताविक चर्चा

प्रेरक[1]—नमस्ते महाशयजी ! क्या आपने पं० वीरभानुशर्मामिश्र–रचित कन्योपनयन-निषेध पढ़ डाला ?

लेखक–नमस्ते ! जी हां, सारा पढ़ा।

प्रेरक—अच्छा। तो अब आप इसका उत्तर लिख डालें।

लेखक–ऐसे वैसे पण्डितंमन्यों को तो आप भी अच्छा जवाब दे सकते हैं। इनके निबन्ध में है क्या ? उन्होंने स्वतन्त्र बुद्धि का तो उपयोग ही नहीं किया. द० ति० भास्कर जैसी पुस्तक को सामने रखकर 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' की भान्ति चल दिया हैं।

प्रेरक—तो भी आप इसका उत्तर लिखेंगे तो अच्छा प्रभाव पड़ सकता है।

लेखक–किन्तु ऐसे क्षुद्र ग्रन्थ की उपयोगिता ही क्यों देनी ?

प्रेरक—यह तो आपका कथन ठीक है, किन्तु जहां क्षुद्र भी दुर्गन्धि सडती हो, वहां योग्य औषधी न डाली जाय तो उसकी गन्ध लेनेवालों पर बडा बुरा प्रभाव पडता है।

लेखक—परन्तु पं० वीरभानुजी की भूमिका ही उनका खण्डन कर रही है। उन्होंने लिखा है कि "संस्कृतविद्या जो द्विजमात्र का आधार थी, उसके शब्दों का भी अब शुद्ध उच्चारण नहीं होता। इस प्रकार धर्मविप्लव होनेसे अनेक मतभेद भी हो गये। जिस महात्मा को कुछ भी सहायता मिली कि झट उसने अपना नवीन पंथ कल्पित कर शास्त्राऽनभिज्ञ जनसमूह को धोखे में डाल उन्हें खोखा बनालिया। इसका फल इस देश में यह हुआ कि फूट का वृक्ष उत्पन्न होकर धर्म में बाधा डालने लगा। इन नवीन मतों से तो हानि हो ही रही थी कि उसी समय बाबा दयानन्द सरस्वतीजी ने भी आ...कुठार प्रहार कर दिया"। (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ ३) पं० मिश्रजी का यह लेख उनका ही पैर उखाड़ रहा है। कलियुगको बैठे आज पांच हजार वर्ष हो चुके। इसके मध्य में,

---

१. महाशय नरसिंहलाल घमणमल्लजी मन्त्री कन्या–ब्रह्मचर्याश्रम ठट्टा सिन्ध, जिन की उत्साहभरी अनेकानेक आर्यसमाजिक सेवा से आर्य जनता अच्छी तरह अभिज्ञ है।

वाममार्ग, बौद्धादि नास्तिक मत, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत, वैष्णवादि अनेक हिन्दु मत पन्थ चले। पं० मिश्रजीके कथनानुसार उपरोक्त सब मत-पन्थ कलियुग में चलने से नवीन कपोलकल्पित हैं और अनपढ़ों को धोखे में डालने वाले हैं। पं० मिश्रजी स्वयम् उन मत-पन्थोंसे पृथक् नहीं अतएव वह भी तो शास्त्राऽनभिज्ञ (अनपढ़) और धोखेमें पडे हुवे हैं उनके ही बाबा शङ्कराचार्य-जीने उन सब शैव-वैष्णवादि मतोंका स्वामी दयानन्दकी भांति खण्डन किया है जिनमें पं० मिश्रजी और उनके अनेक नामधारी सनातनी भाई फसे हैं। देखो शङ्करदिग्विजय।

शिवविष्ण्वागमपरैर्लिङ्गचक्रादिचिह्नितैः।
पाखण्डैः कर्मसंन्यस्तं कारुण्यमिव दुर्जनैः ॥१॥३६॥

अर्थात् शिव तथा विष्णुकी उपासना के कल्पित शास्त्रोंका आश्रय लेनेवाले तथा लिङ्ग चक्रादि चिह्नको धारण करनेवाले उन पाखण्डियोंने यज्ञादि कर्मका नाश किया है जैसा दुर्जनोंने करुणाका। इस प्रकार।

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः कापालिकैर्वैष्णवै
रप्यन्यैरखिलैः खलैः खलुखिलं दुर्वादिभिर्वैदिकं।
पन्थानं परिरक्षितुं क्षितितलं प्राप्तः परिक्रीडते
घोरे संसृति कानने विचरतां भद्रङ्कर शङ्करः ॥४॥८३॥

शाक्त, पाशुपत, क्षपणक, कापालिक, वैष्णव और अन्य समग्र दुर्वादी खल पुरुषोंने प्रसिद्ध वेदमार्गको तोड दिया था उनमेंसे वेदका रक्षण करनेके लिये········· श्री शङ्कराचार्य क्रीडा करते थे।। इससे सिद्ध हुआ कि शैव, (लिङ्गपूजक) वैष्णव, शाक्त (देवी पूजक) आदि सब मत कल्पित कलियुगी हैं। स्वय स्वामी शंकराचार्य जीभी कलियुगमें हुए जिन्होंने नवीन मायावाद चलाया। श्रीमद् रामानुजाचार्य तथा श्रीमद् वल्लभाचार्य प्रभृति वैष्णवाचार्यों ने पुनः जोरशोरसे शंकरमतका खण्डन किया और वे सब कलियुग के हजार पांचसौ वर्षमें हुए। इस अवस्थामें पं० मिश्रजी और उनके सहायक भाटिया शेठ चतुर्भुजदास गङ्गारामजी की क्या दशा होगी ? क्यों कि वे दोनों शैव वैष्णवही होंगे तथा लिङ्ग चक्रादिक चिह्नोंको भी धारते होंगे फिर उनके लिये क्या शंकरदिग्विजयमें प्रयुक्त किये हुए विशेषण दिये जांय ?

प्रेरक—इस हिसाबसे तो वे सनातनी कहलानेवाले सब झूठे कलियुगी आपापन्थी ठहरे। एक दूसरोंका परस्पर खण्डन किया तो फिर उनमें से सच्चा कौन ?

लेखक—सच्चा कोई नहीं; कारण कि पं० मिश्रजी के ही कथनसे वे सब नवीन मत चलानेवाले, फूटका वृक्ष उत्पन्न करनेवाले और धर्ममें बाधा डालनेवाले हुए। उन्हीं कलियुगी पंथ प्रवर्तकोंने प्राचीन वेद मर्यादाका उच्छेद करदिया, अपना अपना पृथक् आचार्यत्व जमाया और स्त्रीपुरुषोंका सच्चा वर्णाश्रमधर्मका नाश किया। पुरुषोंका यज्ञोपवीत मात्र शौचादिके समय कर्णपर चढ़ाने तकही रह गया और कन्योपनयन संस्कार जो द्विजत्व प्राप्त करनेके लिये अत्यावश्यक धर्मथा उनको **"स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्"** इत्यादि कपोलकल्पित मनघढंत वाक्य श्रुतिके नामसे कहकर उडा दिया। परिणाम पं० मिश्रजीके लेखानु–सार ही आया कि "संस्कृत विद्याका शुद्ध उच्चारण तक भी न रहा"। सत्य है, शूद्रा मातासे द्विजबालक कैसे बन सकते हैं? इन नवीन मत मतान्तरों की लीला देख श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने पुनः पुराकल्पका **शुद्ध वैदिक** धर्मका उद्धार कर **आर्यसमाज** स्थापित किया जिनके प्रतापसे आज लडकोंके गुरुकुलोंके साथ, **कन्याएँ भी** ब्रह्मचर्याश्रम धारण कर, उपनीत होकर सच्ची 'द्विज' बन रही हैं। शुद्ध उच्चारणके साथ संस्कृत तथा वेद विद्याका उद्धार कर रही हैं तथा गार्गी, मैत्रेयी, सुलभाकी भांति ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनी बन रही हैं। संसार देख रहा है और देखेगा कि प्राचीन (पुराकल्पकी)वेद धर्मकी मर्यादा को पुनः किसने स्थापित किया? ब्रह्मचर्यादि आश्रमों को मिटाकर वेदोंके नामो-निशानतक भुलानेवाले, अपने-अपने कल्पित मतोंसे फाटफूट पडानेवाले मध्यकालिक **'शिव विष्णवागमपरैः…… …………पाखण्डैः'** शिव विष्णुके कल्पित आगमन परायण पाखण्डियोंने कि वे सब को एक ही **'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'** का **'नान्यः पान्था विद्यतेऽयनाय'** मार्ग पर ले जाने वाले, **'सहनाववतु सहनौभुनक्तु'** से फाट फूटको एकतामें मिलाने वाले, **'सङ्गच्छध्वं संवदध्वम्'** से अनेक कुसंकल्पेशित ज्ञाति जाति पल्वलों के दादुरों को एक ही आर्य–प्रजाकीय महासागर में बहानेवाले, संसार में स्वर्ग उतारने वाले महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने?

प्रेरक—तब तो यह भी सिद्ध हुआ कि ये नवीन कलियुगी मतवादियों ने सच्चे ज्ञान–गुरु–तीर्थ, ब्रह्मचर्यादिव्रत, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, आदिकोंकी सेवारूप श्रद्धापूर्वक कर्म-श्राद्ध, चेतन ब्रह्मोपासना, गुणकर्मसे वर्णव्यवस्था, अक्षतयोनि कन्याका पुनर्लग्न और आपद्धर्ममें व्यासादि से किया हुवा नियोग इत्यादिकोंके स्थानमें मत्स्य कच्छकी

भांति पानीमें गोता लगाना ही तीर्थ, भूखसे मरना आदि ही तामस व्रत, मुर्दोंके पीछ वृथा खिलाना ही श्राद्ध, जड पूजा ही सगुणोपासना जन्माभिमान से ही वर्ण तथा विधवाओं पर बलात् वैधव्य रखकर गुप्तव्यभिचार और भ्रूणहत्याओंका पाप आदि अनेक अनर्थ परम्परा शुरू कर दी।

लेखक—सत्य है। ऐसे धर्म के नाम से प्रचरित पाखण्डों का श्रीस्वामी दयानन्द खण्डन न करते तो और क्या करते? अच्छा किन्तु पं० मिश्र जी ने जो भूमिका में लिखा है कि उन के पुत्र गोकुलचन्द्र ने ठट्टामें शास्त्रार्थ कर कन्या ब्रह्मचर्याश्रमको सम्यक् प्रकारसे छिन्नभिन्न कर उसकी अति ही निर्बल (हीन) दशा कर डाली है वह कैसे?

प्रेरक—आप जानते हैं कि गुजरातीमें एक कहावत है कि 'वरने कोण वखाण्यो तो के वरना बापे' इस प्रकार मिश्रजीने अपने आप ही बेटा गोकुलजीके गीत गाये हैं।

लेखक—बात भी ठीक है। और किसीने प्रशंसा नहीं की तो बापने करडाली, यह भी तो प्रसिद्धि देने लेने की एक फेशन है। अपिच बापने गोकुल बेटाका कार्य भी तो बडा पवित्र बताया है। क्यों न बतावें? **गावः कुलं यस्य स गोकुलः** बैलकुलवालोंका दूसरा क्या काम हो सकता है? किसी उगता नया पौदाको छिन्न भिन्न करडालना यह अपना सच्चा जातिधर्म गोकुलपिताजीने बतलाया। गुर्जरकवि दलपतरामने ठीक लिखा है 'नाम महिमा ते राखे कोय एवा पुरुष बहु विरला होय' तो फिर गोकुल अपना नाम महिमा क्यों न रक्खे? किन्तु ईश्वरका बडा उपकार कि कन्या ब्रह्मचर्याश्रम रूप कल्पवृक्षोंकी ऐसे गोकुल जितनी कलमें करते रहेंगे इतनी ही उन आश्रमोंकी वृद्धि होंगी?

प्रेरक—अस्तु; किन्तु आप तो अपने लेख रूप जलसे इस आश्रमकी जडको सिंचन करें।

लेखक—अच्छा मैं प्रयत्न करता हूं किन्तु मैं अपनी मुश्किलोंको भी बराबर समझता हूं। यदि कन्योपनयन संस्कार के रचियता सद्गत विद्वद्वर पं० श्री इन्दुशर्माजी विद्यमान होते तो वोह पं० मिश्रजीकी जरूर पक्की खबर लेते। मेरी तो मातृभाषा भी गुजराती है देवनागरी नहीं इससे मैं हिचकता हूं।

प्रेरक—कोई हरज नहीं। आप गुजराती होते हुए देवनागरी भाषा में लिखेंगे तो यह बात देवनागरी भाषा प्रचारकोंके लिये विशेष आनन्ददायक होगी।

लेखक—अस्तु तो मैं पूर्ण विश्वास रखता हूं कि किसी प्रकार सम्पूर्ण भारतकी एक भाषा देवनागरी करनेमें सब प्रान्तवासियोंको तन मन धनसे सहायता करनी चाहिये और इस ख्यालसे मैं गुजराती होता हुआ भी देवनागरीकी सेवा करनेको उद्यत होता हूं तो सम्भव है कि भाषा सम्बन्धी दोष प्रतीत होंगे किन्तु इनके लिये मैं पूर्वसे ही क्षमाप्रार्थी हूं।

'सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता' (भवभूति)

अन्तमें मैं सर्व सज्जनोंसे निवेदन कर देता हूं कि पं० वीरभानुमिश्रने जो कन्योपनयन निषेध निबन्ध कन्योपनयन संस्कारके सामने लिखा है वह बिल्कुल क्षुद्रांशमें है। मिश्रजीने कन्योपनयन संस्कारका भी सम्पूर्ण क्या कुछ जवाब नहीं दिया। कहीं कहींसे थोडी बात लेकर ऊटपटांग उत्तर छपा दिया यह उचित नहीं। हम भी यह कह देते हैं कि यदि मिश्रजी अथवा और कोईभी हमारा 'कन्योपनयन विधि' का पुनः निषेधात्मक उत्तर लिखें तो सम्पूर्ण प्रमाण जो हमने दिये हैं उन एक एक को सप्रमाण यथार्थ उत्तर दें अन्यथा लोगोंको उपलक बातोंसे बंचना देना अधर्म है। इत्योम् शम्.

वैदिक धर्म का विनीत सेवक,

महाराणीशङ्कर शर्मा,

ओ३म्

कन्योपनयन-विधि

अर्थात्

कन्योपनयन—निषेधका खण्डन

(शास्त्राथ)

कन्योपनयननिषेधक—हा, घोर कलियुग हमारे घरोंमें और सनातन धर्म-में घुस पड़ा है। देखते हैं और जल जलकर भूंज मरते हैं। और तो जो कुछ करना था वह आर्यसमाजियोंने किया ही यद्यपि हमारे सनातनी पण्डितोंने भीतोंमें अपना शिर पटक पटक कर लोहु निकाला। ब्राह्मणातिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रोंतक पुरुषोंका उपनयन संस्कार उन्होंने कराया यह भी मानो ठीक किन्तु हाय 'कन्योपयन-संस्कार' स्त्रियोंका जनेऊ? शिव, शिव, शिव, अब्रह्मण्यम् २। लडकों के गुरुकुल खोलकर उन्होंने **'अष्टवर्षा भवेद्गौरी'** (वालविवाह) की जड काट डाली, किन्तु हाय, कन्यामहाविद्यालय जालन्धर, कन्या ब्रह्मचर्याश्रम ठट्ठा सिन्धादि अनेक कन्या गुरुकुलोंमें लडकियोंका उपनयन संस्कार देखकर लाचार हमारी आंखें क्यों नहीं फूट जातीं? हम ने 'कन्योपनयन–संस्कार' नामक ग्रन्थ के सामने दयानन्दियों को भली वुरी गालियां देकर 'कन्योपनयन निषेध' निवन्ध लिखा, किन्तु शोक! **'स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्'**[1] या **'नाधीयताम्'** व्याकरण से ठीक नहीं जानते यह हमारे घर की श्रुति हमारी जिह्वामें ही रह गई और इन कन्या आश्रमों की दिन दुगणी और रात चौगणी उन्नति हो रही है। अपने मुख पर तमाचा मार गाल लाल बनाकर फिरें और अनपढ़ असंस्कृतज्ञ सनातनियों को व्हेकावें, दूसरा क्या उपाय? हा कलियुग २ कन्योपनयन संस्कार?

कन्योपनयन विधायक—महाशय निषेधक जी! आप 'काजी क्यों दुबले तो कि सारे शहरकी फिकर' की भांति इतने दुर्वल न हो जाया करें। यदि कन्याओंका

---

१. कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १७ श्रुति—'स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्' 'न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयताम्' लिखा गया है वह सर्वथा अशुद्ध है। व्याकरणसे 'अधीयाताम्' ही हो सक्ता है। परन्तु जैसी पं० वीरभानु मिश्रजीकी कपोलकल्पित श्रुति तथा विद्वता है वैसी ही मिश्रजीकी व्याकरणमें योग्यता है। (विधायक)

उपनयन संस्कार कराने से आप के घरमें और धर्ममें कलियुग घुस पड़ा है तो फिर वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन, रामायण, भारत, स्मृति, कल्प सूत्रादि ग्रन्थ जो कि प्राचीन कालमें कन्योपनयनका विधान कर रहे हैं वे सब कलियुगी मिथ्या ठहर जायंगे और आप सनातनी मिटकर आज कल के कमलाकरकृत नवीन निर्णयसिन्धु के असनातनी मेंढक वन जायंगे।

निषेधक—वह कैसे? क्या प्राचीन श्रुति, स्मृति, सूत्रशास्त्रोंमें स्त्रियों के लिये उपनयनका विधान है? और निर्णय सिन्धुका रचयिता कमलाकर भट्ट असनातनी अर्थात् नवीन क्यों?

विधायक—कमलाकर भट्टने विक्रम संवत् १५६८ में निर्णय सिन्धु ग्रन्थ लिखा अतः यह कोई पुराना ग्रन्थ नहीं और न कमलाकर भट्टकी निज बातें आर्ष मानी जा सक्ती हैं। अब सुनियें, हम आप के निषेधका क्रमवार उत्तर देते जाते हैं। कन्योपनिषेध. पृष्ठ ६ पर लिखा गया है 'ये समाजी भाई कन्याओं को उपनयन (यज्ञोपवीत) देने की सिद्धि में प्रथम प्रलाप यह आलापते हैं कि—महात्मा हारीतने निर्णय सिन्धु में कहा है कि' इस वाक्य में जो 'निर्णय सिन्धु में' पद मिलाया गया है यह सर्वथा अनपढ लोगों को वंचना देने के लिये है। आर्यसमाजी बराबर जानते हैं कि निर्णय सिन्धुका रचयिता कमलाकर भट्ट है जिन से कई सैकडों वर्ष पूर्व म. हारीत हो गये हैं फिर हारीत निर्णय सिन्धु में कहां से कहने को आते थे? हारीत स्मृति ही पृथक् है। कन्योपनयन संस्कार के रचयिता सद्गत् पं० इन्दुशर्मा ने स्तवक २ पृष्ठ ५८ में निर्णय सिन्धुका कहीं नाम नहीं दिया। उन्होंने लिखा है 'महात्मा हारीत ऋषि कहते है कि' फिर समाजी भाई का नाम लेकर 'निर्णय सिन्धु' लिख डालना यह निषेधक जी की लज्जाभरी धृष्टता है और इस से मिथ्या आलाप प्रलाप कौन करते है वह पाठक वृन्द अवश्य जान जायंगे।

निषेधक—छल भी तो न्यायका एक अङ्ग है। लगा तो तीर नहीं तो तुक्का इस नियमसे हम प्रयोग कर देते हैं। खैर हारीतने निर्णयसिन्धुमें नहीं कहा तो निर्णयसिन्धुके रचयिताने हारीतके वचन उद्धृत किये यही भाव निकाल लीजिये।

विधायक—अच्छी बात है। आस्ते २ ठिकाते आते जाओगे। तो महात्मा हारीत कहते हैं कि—

द्विविधाः स्त्रियः। ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति। सद्योवधूनामुपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः॥

अर्थात्—"स्त्री दो प्रकारकी होती हैं। (१) एक ब्रह्मवादिनी (२) दूसरी सद्योवधू: उनमें ब्रह्मवादिनी स्त्रियोंका उपनयन, (यज्ञोपवीत) अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने गृह (घर) में भिक्षाचर्या (भोजन) का विधान है। तथा सद्योवधूओंका विवाह समय उपस्थित होनेपर उपनयन मात्र कराकर विवाह करना चाहिये।"

कहिये निषेधजी! हारीत महाराज तो स्त्रियोंके लिये उपनयनका साफ २ विधान करते हैं।

निषेधक—परन्तु देखिये कन्योपनयन निषेध पृष्ठ ८।९।१० में निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद पुनरुपनयन प्रकरणमेंसे बतलाया गया है कि–**यत्तु हारीतः "द्विविधाः स्त्रियः·········विवाह कार्यः" इति तद्युगान्तरविषयम्।**

'पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा' ॥ इति यमोक्तेः

अर्थात्—जो हारीत कहता है कि, दो प्रकार की वधू होती हैं,······ ··· सद्यो वधूओंका उपनयन करके विवाह करे"सो यह युगान्तर विषय अर्थात् दूसरे युगोंके विषयमें है, कारण कि यमाचार्यने कहा है कि–"प्रथमकल्पोंमें स्त्रियोंको मौंजी वन्धना, वेदोंका पढ़ाना और गायत्रीका उपदेश इष्ट था" ॥ यह बात आगेके कल्पों की है वहभी न जाने कौनसे कल्पकी तथा किस शास्त्रके आधारसे लिखी हुई है?

विधायक—अच्छा इससे इतना तो सिद्ध हुआ कि सनातनी ऋषि हारीतने तो स्त्रियोंके लिये यज्ञोपवीतका विधान किया परन्तु चारसौ वर्षका असनातनी कमलाकर भट्ट यह न सहन कर सका और **शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी** इस अपने जमानेकी अन्ध परम्परामें अपनी ओर से लिख दिया कि **'तद्युगान्तरविषयम्'** अर्थात् यह दूसरा युगका विषय है। खैर सुनाइये **निषेधकजी**! आप सनातनी है कि असनातनी?

निषेधक—हम तो चुस्त सनातनी हैं।

विधायक—अच्छा तो फिर एक विधान चारसौ वर्षसे लिखा हुआ हो और दूसरा हजारों वर्षोंसे तो इनमें आपकेलिये कौनसा सनातनी हो सकता है?

निषेधक—जो विशेष पुराना हो वही। किन्तु पुरानामात्र होनेसे हम आर्यसमाजियोंकी बात नहीं मान सक्ते हैं।

विधायक—अजी भाई! म० हारीत आर्यसमाजी नहीं थे।

निषेधक—आर्यसमाजी तो नहीं था किन्तु आर्यसमाजको पुष्ट करनेवाली बात लिख गया अतः कमलाकर भट्टकी नवीन बात हमारे स्वार्थकी विशेष साधक है।

विधायक—तब तो आप जैसोंके लिए भर्तृहरिका नीतिवचन ठीक चरितार्थ हो सक्ता है कि '**मूर्खान्यःप्रतिनेतुमिच्छतिबलात्सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः**'।

निषेधक—इन सब बातोंको तो हम पचा गये हैं मात्र कमलाकर भट्ट ही नहीं परन्तु कन्योप-निषेध पृष्ठ ११ में पराशरस्मृतिका माधवभाष्य भी बतलाया गया है कि—

> **अतएव हारीतेनोक्तम् 'द्विविधाः स्त्रियः सद्योवध्वश्च ।'**
> **इति मैवम् । तस्य कल्पान्तरविषयत्वात् । यथाच**
> **यमः । पुराकल्पेषु नारीणाम् । इति ॥**

माधवाचार्य भी कहते हैं कि "इसलिये हारीतने जो कहा है कि स्त्री दो प्रकार-की होती हैं......इत्यादि वह कल्पान्तर विषय होनेसे नहीं करनी चाहिये जैसा कि यमाचार्य इस बातको पुराकल्पोंकी ठहराता है" ॥

विधायक—यहां भी हारीतकी भांति सनातनी ऋषि पराशर स्वयं अपनी ओरसे कुछ नहीं लिख गये, किन्तु कमलाकरजी रूढिप्रिय असनातनी भ्राता माधवजी स्त्री जाति पर शेरखां बनगये। ठीक देखा जाय तो या तो कमलाकरने माधवका अनुकरण किया है अथवा माधवने कमलाकरका। अब जो ये सबोंने यमाचार्यजीका—

> **'पुराकल्पेषु..........सावित्रीवाचनं तथा'**

इस श्लोकमें कहे हुए '**पुराकल्पेषु**' इन शब्दों पर जोर देकर युगान्तर विषय लिखा है इसकी ठीक आलोचना करनी चाहिये। **कल्प** का अर्थ जो युग किया है तो यह कैसा युग? '**संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि ॥ अमरकोश** ४। २२। इनमें कल्प प्रलयको कहते हैं तो क्या पूर्व प्रलयोंमें कन्योपनयन इष्ट था? प्रलयोंमें भी कुछ क्रियाएं हुआ करती हैं? दुर्जनतोष न्याय से **पुराकल्प** का अर्थ युगान्तर विषय मान लिया जाय तो भी हमारे लिये यह इष्ट है। क्यों कि तब तो प्राचीन कालमें स्त्री यज्ञोपवीत धारण कर वेदोंका पठन-पाठन तथा गायत्री मन्त्रका जप करती थीं यह बात हारीत स्मृतिपर कथनकरते समय कमलाकर भट्ट माधवाचार्य आदि सब मान गये और आधुनिक सनातन नामधारी निषेधक भी उन टीकाकारों के साथ गान पर ताल आलाप गये। तो फिर पुराकल्प अर्थात् प्राचीन कालमें जो कन्योप-नयन संस्कारका इष्ट रिवाज था यह रिवाज स्वार्थी ब्राह्मणंमन्यों के प्रचारप्रपञ्चसे मध्य-कालमें छूट गया और स्त्रियोंको उनके सनातन उपनयन आदिके धर्मोंसे वञ्चित रखा गया। उक्त सनातन—पुराकल्पका स्त्री धर्मको पुनः स्थापित करना वही सनातन

धर्मिटोंका परम कर्त्तव्य होना चाहिये। नामधारी सनातनी उनके भी पूजनीय हारीत मुनि और यमाचार्यका बतलाया हुआ प्राचीन युगके धर्मको पुनः इस युगमें नहीं प्रचलित करते तो ये लोगों पर उन पूर्वोक्त प्राचीन आचार्योंका कोप उतर रहा है और उतरेगा तथा उनके धर्मसे वञ्जित या भ्रष्ट करनेसे **यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः** यह मनुवचनानुसार स्त्री जाति भी अभिशाप दे रही है और देती रहेगी। इसके विपरीत आर्यसमाजियों पर उन ऋषि मुनियोंकी कृपा विभूति बरस रही हैं और बरसेगी तथा स्त्री जाति भी **यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः** इस वचनानुकूल आशीर्वाद दे रही है और देगी। कहिये निषेधकजी! अब हारीत और यमाचायके स्मृतिवचनानुकूल सनातनयुगधर्मको मान देने वाले आर्यसमाजी सच्चे सनातनधर्मी कहायेंगे कि नवीन पीछेसे लिखे गये ऊटपटांग वाक्योंपर चलकर सनातनतासे पतित होनेवाले नामधारी सनातनी?

निषेधक—तब क्या निर्णयसिन्धुका कमलाकर भट्ट और पराशर स्मृतिका छाष्यकार माधव सनातनधर्मी नहीं थे?

विधायक—परन्तु हम तो इनसे पूर्वके होनेवाले हारीतमुनि और यमाचार्यके लिये पूछते हैं कि क्या तब वे झूठे थे? और जो पूर्वकल्पोंमें स्त्रियोंको उपनयन (यज्ञोपवीत) वेदादि पठन पाठन और गायत्री मन्त्रका जप आदिका अधिकार था वह वेदमर्यादासे विहित नहीं था? क्या पूर्व कल्पमें स्त्रियोंको अधिकार देने वाले अनभिज्ञ मूर्ख थे? वे वेद नहीं पढ़ेथे? या क्या वे वेदविरुद्ध कार्य करते थे? और आज आप लोग इनसे विपरीत चलकर, जब आर्यसमाजी वही पुरा कल्प की वैदिक मर्यादाका पुनरुद्धार करते हैं, तब उनको भलीबुरी सुनाकर मूंछे मरोड़ रहे हो यह 'उल्टा चोर कोटवालको दंड देय' वह न्याय सिद्ध कर रहे हो दूसरा कुछ भी नहीं।

निषेधक—अरे, किन्तु वे पुराकल्पकी बातें आज कैसे चल सक्ती हैं। आज तो कलियुग है कलियुग और इस लिये कमलाकर और माधवने वह पुराकल्पकी बातको उड़ादिया है।

विधायक—बस यूं ही कलियुग कलियुग कहकर सनातन धर्म का दम मारना चाहते हो? तब तो फिर वेद, उपवेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदाङ्ग, उपाङ्ग तथा रामायणादि अनेकानेक प्राचीन ग्रन्थ जो इस कलियुगमें नहीं लिखे गये वे सब आपके मतसे प्रदर्शनी के योग्य ही रह जायंगे और उनका विधान-प्रमाण भी इस युग में नहीं चल सक्ता। वाहरे वाह सनातनधर्मी, पुराकल्प की सब बातें **'इति तु कल्पान्तरम् युगान्तरम्'** करके उड़ा दी जायंगी फिर सनातन वैदिकधर्मी कैसे कहलाओगे? अच्छी बात है तब आपको तो पुराकल्पके वेदादि सच्छास्त्रोंका नाम तक नहीं लेना चाहिये,

क्यों कि ये सब **'युगान्तरम्'** हैं। मात्र कलियुगी अनार्ष, वाम, बौद्ध मार्गादिके मतों को पकड़ रखना। मुबारक है वेदादि सच्छास्त्रोंका अधिकार आर्यसमाजियोंको। आप तो अपने मुखसे अपना ही खण्डन करते रहिये, मूर्खोंको बहकाते रहिये और ऐसे सनातन धर्माभास की टांग तोड़ते रहिये। आप कलियुगियोंको तो आर्यसमाजियों के सामने वेदादि पुराकल्पके आर्ष ग्रन्थों का तथा तद्विहित सिद्धान्तों का दावा ही नहीं करना किन्तु कमलाकर भट्ट और माधवका वाक्य रटते रहना कि वेद अपौरुषेय अनादि होनेसे कल्पान्तरका विषय है अतः इस युगमें कुछ कामके नहीं। अन्य प्राचीन श्रौत स्मार्त तथा कल्प सूत्रोंकी बातें भी हारीत और यमाचार्य की स्मृतिकी भांति यूं कह कर उड़ादेना कि **'मैवम्। तेषां कल्पान्तरविषयत्वात्'**॥ परन्तु तो भी 'अन्धों में काना (एकाक्षी) राजा' बनकर गर्जते रहना **'बोलो सनातन धर्मकी जय'** ॥

अब हम यमाचार्यजीके **पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते**। इस श्लोकमें जो **कल्प** शब्द आया है इसकी ठीक सङ्गति लगाना चाहते हैं कि क्या यह श्लोकमें आया हुआ **कल्प** का अर्थ युग अर्थात् समय है कि कुछ और ही है। यदि **पुराकल्प** समय वाचक माना जाय तो **पुरा** शब्द होनेसे **इष्यते** यह वर्तमान कालका प्रयोग ठीक नहीं, क्यों कि **परोक्षे लिट्** इस पाणिनिके सूत्रानुसार भूत अनद्यतन परोक्ष कालमें धातुको **लिट् लकार** लगना चाहिये। **इष्यते** का अर्थ 'इष्ट है' 'इष्ट था' नहीं। यदि ऐसा अर्थ करें कि प्रथम कल्पों में अर्थात् प्राचीन जमाने में स्त्रियों का मौञ्जी बन्धन इष्ट था तो यह सर्वथा अशुद्ध प्रयोग प्रतीत होता है लिट् में ठीक प्रयोग **इष्यते** का **ईजे** होना चाहिये। आचार्य ने यह प्रयोग नहीं किया अतः सिद्ध है कि यहां **पुराकल्प** समय वाचक नहीं।

निषेधक—तो क्या इन का और अर्थ भी हो सकता है?

विधायक—अवश्यमेव, यमस्मृति का युगान्तर अर्थ करना उन के भावसे सर्वथा विपरीत है। कारणकि ऐसा अर्थ करने से जितनी पूर्व काल की विधि निषेध सम्बन्धी बात है वे सब आज रद्द हो जाती हैं। वेदादि किसी प्राचीन आर्ष ग्रन्थ को प्रमाणभूत मानने की इस युगमें कोई आवश्यकता नहीं देखेगा और इससे तो अन्धाधुन्ध फैल जायगा। परन्तु **'पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते'** का सच्चा अर्थ तो यह है कि **पुराकल्पेषु** अर्थात् **पूर्वविधिषु** यानी अन्य वेदाध्यापन सावित्रीवाचन तथा विवाहादि विधि करने से पूर्वविधि में प्रथम स्त्रियों का मौञ्जी-बन्धन-यज्ञोपवीत संस्कार इष्ट है! तत्पश्चात् वेदों का पढ़ाना और गायत्रीमन्त्र का जप आदि विधि-क्रिया करनी चाहिये। यह अर्थ ही योग्य है तथा व्याकरण के नियम से भी सम्यक् लग जाता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी का सूत्र है **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा** ३।३।१३१॥ अर्थात् वर्तमान के समीप में जो काल हो उसको भी लट् लकार वर्तमान

का प्रयोग होता है। उपर्युक्त श्लोक में सब विधि वर्तमान में बतलाई गई है और इस लिये इष्यन्ते प्रयोग समीचीन है किन्तु **पुराकल्प** का भूतकालिक अर्थ करने से व्याकरण स्मृत्यनवकाश तथा अनार्थक्य आदि के अनेक दोष प्रसङ्ग उपस्थित होते हैं अत: सर्वथा मानने योग्य नहीं।

निषेधक—यह तो ठीक किन्तु आप का किया हुआ कल्प का अर्थ किस प्रमाण से सिद्ध हो सकता है।

विधायक—आप ने संस्कृत साहित्य और व्याकरण से तो दुश्मनी कर रक्खी है अन्यथा यूं न पूछते और कन्योपनयन-निषेध में भी मात्र और किसी के लेभागु ग्रन्थ पर ही मुस्ताक रह कर न कूद पड़ते। सुनिये, अमरकोश में कल्प, विधि, क्रम ये तीन नाम नियोग-विधान शास्त्रके हैं। **कल्पे विधिक्रमौ। अमर० १७।४०॥ अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूपं समञ्जसम्। अमर० १८। २४॥** इनमें कल्प नीति वाचक हैं। **शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्दस् ज्योतिष** ये षड् वेदाङ्ग हैं इनमे एक कल्पशास्त्र है जिनकी व्याख्या तथा व्युत्पति ऋक् संहिता उपोद्घात प्रकरण में **सायणाचार्य** निम्नलिखित करते हैं।—**कल्पास्त्वाश्वलायनापस्तम्बबौधायनादि सूत्रम्।** आश्वलायन, आपस्तम्ब और बौधायनादि सूत्र कल्प हैं। **कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्रेति कल्पः।** अर्थात् यज्ञ यागादि प्रयोग का जिस में विधान समर्थन किया हो उनको **कल्प** कहते हैं। बस यही अर्थ ठीक है और इस से हारीत तथा यमाचार्य ये दोनों की स्मृतियों की सङ्गति मिल जाती हैं। हारीताचार्यजी कहते हैं कि 'ब्रह्मवधू और सद्योवधू ये दोनों प्रकार की स्त्रियों का उपनयन संस्कार कराना चाहिये' तथा यमाचार्य जी ने विधान किया कि 'पुराकल्प में अर्थात् यज्ञ यागादि सूत्र विधियों में प्रथम मौञ्जीबन्धन–यज्ञोपवीत देना चाहिये तत्पश्चात् वेदाध्यापन और गायत्री वाचन कराना चाहिये'। मतलब कि कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १८ में जो सुमन्तु तथा मनुमहाराज के वचन उद्धृत किये हैं कि–**सुमन्तुरपि–नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते।** अर्थात् सुमन्तु कहते हैं कि "जब तक यज्ञोपवीत में मौञ्जी न बंधे तब तक वेद का उच्चारण न करे"। **मनु०—न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्।** (मनु० २।१७१) भगवान् मनु कहते हैं कि "मौञ्जी-बन्धन (यज्ञोपवीत) से पूर्व वेद का उचारण न करे"। बस ये सुमन्तु और मनु की भांति इनके वचनों की पुष्टि रूप से यमाचार्य जी ने भी कहा कि प्रथम तो स्त्रियों का मौञ्जी-बन्धन=उपनयन विधि होना चाहिये पश्चात् वेद पढ़ना आदि; क्योंकि विना उपनयन, वेदाध्यापन तथा अन्य कर्मकाण्ड नहीं हो सकते हैं यह श्रौत आदि स्मार्त परिपाटी है। यमस्मृति का यही अर्थ सर्वतोभावेन मनु, हारीत तथा सुमन्तु आदि आचार्यों के वचनों के साथ एकवाक्यता कर देता है।

परन्तु कोश, व्याख्या तथा व्युत्पत्ति प्रतिपादित कल्प के प्रसिद्ध अर्थ को छिपा कर युगान्तर का रगड़ा आजकल के ब्राह्मणंमन्यों ने डाल दिया और स्त्रियों के सनातन द्विज धर्म का नाश किया। पुन: उत्तर-रामचरित द्वितीयाङ्क में आत्रेयी वन देवता के संवाद में कल्प शब्द विधि वाचक आया है। यथा—**तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ।।** 'तत्पश्चात् भगवान् (वाल्मीकि) ने एकादश वर्ष होने पर क्षात्र कल्प से अर्थात् क्षत्रिय संवन्धी विधि से उपनयन संस्कार कराकर उन दोनों लव तथा कुश लड़कों को त्रयीविद्या पढ़ाई'। यहां कल्प शब्द पर **वीरराघव कृत** यह टीका है।—**कल्प्यतेऽनुष्ठीयतेऽनेनेति कल्पः अनुष्ठान परिपाटी प्रकाशक ग्रन्थः**। जिस से अनुष्ठान किया जाय वह कल्प अर्थात् अनुष्ठान परिपाटी का प्रकाशक पुस्तक। **कल्प** शब्द **क्लृपू सामर्थ्ये** धातु से वना है। जिससे भी यमस्मृति का यह अर्थ निकलता है कि शुरु में स्त्रियों का यज्ञोपवीत का समर्थन है पश्चात् अन्य विधियों का। इन सब बातों से स्पष्ट हो गया कि **'पुराकल्पेषु'** को युगान्तर कहकर उड़ा देना यह लक्षण, प्रमाण तथा परीक्षा से सर्वथा असङ्गत और अनुचित है, सनातन परिपाटी से विपरीत है तथा श्रुति स्मृति विरोधक होने से अविहित है।

निषेधक—किन्तु ये सब उपर्युक्त बातें स्त्रियों के लिये पूर्वकाल में होती होंगी। आज कलियुग में नहीं होनी चाहिये।

विधायक—यह आपका कथन ठीक नहीं। यदि पूर्वकालिक कन्योपनयन संस्कार का इस कलियुग में निषेध होता तो अवश्य कलिवर्ज्य धर्मों में उस का निषेध किया जाता किन्तु निषेधक जी के ही निर्णयसिन्धु के ही कलिवर्ज्य प्रकरण में कहीं भी स्त्रियों का उपनयन का निषेध नहीं। यथा—**निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद-पूर्वार्ध कलिवर्ज्यानि-वृहन्नारदीये**—

'समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा॥
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः।
मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः।
इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः'॥

अर्थात् समुद्र यातु का स्वीकार, घमण्डलु का धारण, द्विजों का अपने वर्ण से अन्य वर्णो की कन्याओं से साथ विवाह, देव से (नियोग) पुत्रोत्पत्ति, मधुपर्क में पशु का वध, श्राद्ध में मांस दान, वानप्रस्थाश्रम, दत्ता क्षता कन्या का पुनर्दान, दीर्घ-काल का ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थान गमन तथा गोमेधयज्ञ इन सब धर्मों को कलियुग में छोड़ देना ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। बस नामधारी सनातनियों के पक्ष के इतने कलिवर्ज्य धर्मों में कहीं भी पूर्वकाल से प्रचलित सनातन श्रुति स्मृति स्थापित कन्योपनयन संस्कार का निषेध नहीं है तो फिर हारीत और यमाचार्य के वाक्यों को **'युगान्तरम्'** कह कर अन्यथा पलटना सर्वथा अधर्म और हठवाद है। पुनरपि निर्णयसिन्धु में जितने कलिवर्ज्य धर्म बतलाये गये हैं वे सब कलियुग में होते रहे और कई अब भी हो रहे हैं। समुद्र यात्रा का जैसा अर्थ आजकल लिया जाता है वैसी यात्रा सिंहलद्वीप, अफ्रीका चीन, जापान, अरबस्तान, (अमेरिका) पातालादि द्वीप द्वीपान्तरों में हिन्दु लोग उपदेश, युद्ध, व्यापार निमित्त, करते आये और कर रहे हैं, किसी ने निषेध नहीं किया नहीं कोई करता है। आज ब्रिटिश साम्राज्य के धार्मिक साहाय्यार्थं यूरोप की युद्धभूमि में भारतवर्षीय सहस्रों ब्राह्मण क्षत्रियादि वीर सुभट्ट जर्मनों से लड रहे हैं। सब संन्यासी हाथ में कमण्डलु लेकर फिर रहे हैं। कौन निषेध करता है? कलियुग के आरंभ में पराशरादि ने अन्यवर्ण की कन्या में से व्यासादि को उत्पन्न किया।

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः। (महाभारत०)

व्यास धीमरी (मच्छीमार) से उत्पन्न हुआ और पराशर चाण्डाली से। मात्र नियोग का सिद्धान्त ही बतलाने के लिये स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को भली-बुरी सुनानेवाले नामधारी सनातनियों के परमपूज्य पितामह व्यासदेव ने अमलीतौर पर अपनी अम्बा तथा अम्बालिका ये दोनों विधवा भावजों में नियोग कर पाण्डु और धृतराष्ट्र को पैदा किया(देखो महाभारत आदिपर्व अ० १०५ आदि) कुन्ती ने कन्या-वस्था में सूर्यनामक नृपति से नियोग कर कर्ण को पैदा किया जो अविवाहित कन्या से उत्पन्न होने के कारण व्यास की भांति **कानीन** कहलाता है। उसके पश्चात् भी पाण्डु की आज्ञा से कुन्ती ने अन्य राजाओं से नियोग कर पाण्डवों को जन्म दिया। माद्री के लिये भी यही बात है। (देखो महाभारत आदिपर्व० अ० १११–१२० आदि) सना-तनियों के मान्यतानुसार द्रौपदी भी एक साथ पांच पतियों से यावज्जीवन नियुक्त रही। गोमेध, अश्वमेध, तथा नरमेधादि यज्ञ बुद्ध के समय तक होते रहे जिनका बुद्ध ने बड़े जोर शोर से विरोध कर उच्छेदन किया। मध्यकालिक कलियुगी सायण, महीधर और उवटादि ने भी वेदभाष्य में पशुयज्ञ का विधान किया जिनका ऋषि दयानन्द ने

ही शुद्ध अर्थ वतला कर वेदों पर से कलङ्क हटाया। बङ्गाल, संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब, काश्मीर आदि प्रदेशस्थ सनातनधर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि अनेक नित्य मांस खाते हैं तो फिर श्राद्ध में मांसदान की क्या कथा ? वानप्रस्थाश्रम भी आज कल कई लेते हैं। कलियुग में भीष्म, शुकदेव, कुमारिलभट्ट, सनातनियों के भी परममान्य स्वामी शङ्कराचार्य, रामदाससाधु,तथा स्वामी दयानन्द प्रभृति ने दीर्घकाल का तो क्या किन्तु यावज्जीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया। उपर्युक्त कलिवर्ज्य का स्वीकार करनेवालों की कौनसी गति हुई है और होगी वह निषेधकजी बतावें। इस प्रकार कलिवर्ज्य धर्म भी कलियुग में चलते रहे और वे आर्यसमाज की पूर्व अवस्था में सनातनियों के ही मान्य आचार्य और महापुरुष चलाते रहे तो फिर जिनका निषेध नहीं किया गया, ऐसा श्रुति और हारीत यमादि स्मृतिसिद्ध स्त्रियों का उपनयन संस्कार सत्य सनातन वैदिक धर्मावलम्वी आर्यसमाजी करें इसमें इतना विरोध क्यों ?

निषेधक—इस लिये कि (पढ़ो कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १७। पंक्ति ७) **श्रुति—स्त्रीशूद्रौ नाधीयेताम्।** (तथा पंक्ति १६ श्रुति)। **न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयताम्** स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें।

यह श्रुति पढ़ी है इनका क्या करोगे ?

विधायक—वाहरे कन्योपनयन निषेधक का संस्कृत व्याकरण का पाण्डित्य!! दोनों स्थानपर '**अधियेताम्** तथा **अधीयताम्**' का सर्वथा अशुद्ध प्रयोग किया गया है। '**स्त्रीशूद्रौ** तृतीय (अन्य)पुरुष द्विवचन में होने से '**अधीयाताम्**' ही रूप होना चाहिये। अस्तु, किन्तु साथ यह भी नहीं बतलाया कि वह वाक्य कौनसी श्रुति में हैं ? **ऋग् यजुः साम अथर्व** इन चार वेदों को **श्रुति** कहते हैं। इनमें से वह कौनसे वेद की श्रुति—उक्ति है ? परन्तु निषेधकजी को स्वतन्त्र ज्ञान कहां से ? उन्होंने तो कोई ऐसे वैसे ऊपटटांग पुस्तक में से यह अशुद्ध प्रयोगयुक्त वाक्य यूं ही उठाकर लिख मारा। भेड़िया घसाण का मसला निषेधकजी जैसे पराश्रयी पण्डितंमन्यों पर आ पड़ता है। उपर्युक्त वाक्य श्रुति के किसी शत्रु ने अपने आप मनगढ़ंत बना दिया है जिनका अन्धाधुन्ध अनुकरण करनेवाले व्यर्थ श्रुति भगवती को दूषण लगाकर कलङ्कित बना रहे हैं। जो लोग स्त्रियों को शूद्र कहते हैं उनको भी महात्मा हारीत ही आगे चलकर उत्तर देते हैं कि—**न शूद्रसमाः स्त्रियस्तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः। न शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते।** अर्थात् स्त्रियां शूद्र समान नहीं हैं। इस लिये स्त्रियों का छन्दों से (वेदमन्त्रों से) संस्कार करना चाहिये; क्योंकि शूद्रयोनि में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नहीं उत्पन्न होते"। महात्मा हारीत ने और भी वात को स्पष्ट करा दिया। इन्हीं वातों पर विवाह-मीमांसा में मीमांसक ने स्पष्टीकरण किया कि—

'संस्कारो नाम दोषापनयनं गुणाधानं च। तत्र गर्भाधानादय उपनयनान्ता दोषापनयनात्मकाः। कुतः। तदकरणे व्रात्यत्वप्रसङ्गात्। तत्करणे संस्कृतः कुमारः शुद्ध इति प्रसिद्धेश्च। एवं च यावद्दोषापनयनं तावदवश्यं कर्तव्यत्वाद् द्विजाङ्गनानामपि तत्संभव इति वेदराशेरभिप्रायः। वस्तुतस्तु द्विजाङ्गनानामपि यथाकुलं यथाकालं कर्तव्यमेवोपनयनं द्विजात्यविच्छेदाय। कल्पान्तरविषयवचनं चेच्छूद्रयोनय एव सर्वे वर्णाः संभवेयुः। एवं सत्यत्र कल्पे सर्वे वर्णाः शूद्रा एव भवेयुरिति विद्वन्नेत्रपथमाच्छादयत्येव माधववचनं पराशरधर्मशास्त्रव्याख्यान्तर्गतमिति ॥(विवाहमीमांसायां स्त्रीवेदाधिकारे।)

अर्थात् जो संस्कार हैं सो दोष दूर करने के लिये और गुण धारण करने के लिये हैं। इनमें गर्भाधानादि से लेकर उपनयन तक के संस्कार दोष को दूर करनेवाले हैं। क्यों ? उनके न करने से व्रात्यत्व प्रसङ्ग आ पडेगा और करनेसे संस्कृत शुद्ध बालक होते हैं ऐसी प्रसिद्धि है इसलिये दोषों का दूर हटाना अवश्य कर्तव्य होनेसे द्विज स्त्रियों के लिये भी वे संस्कार होने चाहिये ऐसा वेदादिशास्त्रों का अभिप्राय है। वास्तव में द्विजाङ्गनाओं का कुल और काल देखकर उपनयन संस्कार करना चाहिये जिससे द्विज जाति का विच्छेद न होजाय। कल्पान्तर विषय का वचन मानाजाय तो सब वर्ण शूद्रयोनि के माने जायंगे। ऐसा होने पर सब वर्ण शूद्र ही कहलायंगे, अतः माधव का जो **युगान्तर** वचन है वह विद्वानों के नेत्र पथपर अंधकार का पड़दा डालता है"। यह विवाहमीमांसा पुस्तक किसी आर्यसमाजी का नहीं है। अब कहिये निषेधकजी ! यदि आपके कथनानुसार स्त्री शूद्र हैं तो फिर उनमें से उत्पन्न हौनेवाले आप और आपके मत के अन्य द्विज क्या कहलायंगे ? विना उपनयनादि संस्कार से द्विजत्व नहीं आता और द्विजत्व धर्म के विना स्त्री पुरुष द्विज नहीं कहला सक्ते । उपनयन संस्कारहीन स्त्रियों को द्विजत्व प्राप्त नहीं होने से वे सब शूद्रा-व्रात्या हैं फिर उन शूद्रा से खान पान तथा विवाह आदि व्यवहार कैसे हो सक्ते हैं ? शूद्रा से द्विजों की सन्तानोत्पत्ति भी वर्णशकर ही होती है। निषेधकों पर ही यह दोषारोपण आता है जिससे वे कभी नहीं छूट सक्ते। जब तक कि वे लोग स्त्रियों का उपनयनादि संस्कार कराकर उनको सच्ची द्विजा न बनवावें। मनुजी कहते हैं कि—**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥**

अर्थात् द्विज अपने समानवर्ण की और लक्षणवती भार्या से विवाह करे। अब क्या होगा ? निषेधकों के मतमें तो सब स्त्रियां शूद्र होनेसे द्विजों की सवर्णा ही नहीं रहीं, इस लिये ऐसे नामधारी सनातनी द्विज जो आज कल संस्काररहित शूद्र स्त्रियों से खान पान लग्नादि व्यवहार करते हैं वह सर्वथा श्रुतिस्मृति का अपमान, अधर्म और वर्णसंकरता का प्रचार ही करते हैं। परन्तु शोक कि वे लोग ममत्व में आकर हारीत वचनानुसार शूद्र उत्पन्न होते हुए भी जन्ममात्र से द्विज कहलाने का दम भर रहे हैं और अकड रहे हैं किन्तु वेदादि की शास्त्रीय दृष्टि से वे कौन और क्या हैं उनको स्वयं कुद्रत सिद्ध कर रही है। उन्हें तो किसी प्रकार आर्यसमाज से उल्टा ही चलना है। अपना नाक काट कर भी पडौसी को अपशकुन कराने का मसला उन्होंने ले रखा है।

निषेधक—हमारी एक आंख फूटने से सामनेवाले की दो फूटती हों तो ऐसा प्रसङ्ग हम नहीं जाने देते। अब आप हमको यह बतलाइये कि "जैसे लडकों के लिये यज्ञोपवीत की विधि, अमुक वर्ण के लडके को अमुक वर्ष में मुण्डन और कौपीन आदि कराकर यज्ञोपवीत देना पद्धतियों में लिखी हुई है, वैसी स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि किसी भी पद्धति में न होनेसे कदापि मानने योग्य नहीं हो सक्ती"। (कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १०)

विधायक—जो विद्वान् लोग संस्कृत भाषा और शास्त्रोंमें कुछ योग्यता रखते हैं वे अच्छी प्रकार समझते हैं कि शास्त्रकारों ने शास्त्रों के सामान्य विधान में जहां कहीं पुंलिङ्ग (नरजाति) निर्देश किया है वहां स्त्रियों का भी ग्रहण किया है। अन्यथा मनुष्य शब्द के पुंलिङ्ग होनेसे मनुष्य पद में भी स्त्रीजाति का ग्रहण नहीं होगा। परन्तु ऐसा करने से धर्म शास्त्रों में जितने काम न करने को सामान्य निर्देश से विधि-वाक्य वा निषेध-वाक्य लिखें हैं उनके करने न करने मानने न मानने से स्त्री को कोई दोष नहीं लग सक्ता. वैद्यकशास्त्र वा फौजदारी कानूनों (penal Code) में पुरुष निर्देश से प्रयोग होता है तो उस प्रकार के अपराध करनेवाली स्त्री दण्डनीय नहीं हो सक्ती। जैसा कि–**यः कोऽपि विषं भुंक्ते स म्रियते।** इस वाक्य में **यः** तथा **सः** ये पुंल्लिङ्ग वाचक हैं तो इससे क्या कोई स्त्री विष खायेगी तो नहीं मरेगी ? He who will commit theft will be punished अर्थात् जो कोई चोरी करेगा वह दण्डभागी बनेगा। यहां भी 'He' प्रयोग से पुरुषनिर्देश है तो क्या स्त्री को चोरी करने का दण्ड नहीं मिले ? एवमेव धर्मशास्त्र भी तो मनुष्य मात्र के लिये कानून हैं। उनमें भी पुंल्लिङ्ग निर्देश होने पर स्त्री जाति का ग्रहण करना चाहिये। **ब्राह्मणो न हन्तव्यः।** यहां ब्राह्मण–पुरुष वाचक ही लिया जाय तो

ब्राह्मणी को मारनेमें दोष नहीं होना चाहिये। **बालहत्या** नहीं करनी चाहिये ऐसा वचन हो वहां पुंल्लिङ्ग **बाल** शब्दसे लडके की हत्या नहीं करनी किन्तु लडकी की करनी; क्यों कि **बाला** या **बालिका** स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग नहीं।

निषेधक—हमको इस बात पर शास्त्रीय प्रमाण दीजिये। हम बाहरकी ऐसी वैसी मौखिक बातें नहीं सुनना चाहते।

विधायक—अस्तु। हमने तो स्त्रियों के लिये हारीत और यमाचार्यजी के उपनयन विधायक प्रमाण दिये और अब भी अनेक देंगे ही। किन्तु कन्योपनयन—निषेध में एक भी प्रामाणिक श्रुति, स्मृति, सूत्रों का निषेधवाचक प्रमाण नहीं दिया गया, और देते कहां से? मात्र आजकल के टीकाकारों की ऊटपटांग रायें लिख डालीं। और सुनिये.

"पत्र पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति" ॥
'य एनं वेत्ति हन्तारम्'
'स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्' ॥
'उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम' ॥

इत्यादि सैंकडों गीता के श्लोकों में **यः**। **स्मरन्**। **मनुष्याणाम्**। आदि पुंल्लिङ्ग वाचक पद आये हैं तो क्या इस से पत्र, पुष्पादि का प्रदान स्त्री न करे? **यः** पदसे जो पुरुष आत्माको हन्ता मानता है वह ठीक नहीं जानता तो क्या स्त्री ऐसा माननेसे ठीक जानती है? क्योंकि उपर्युक्त श्लोकों में **या** का प्रयोग नहीं। **स्मरन्** ईश्वर का स्मरण करता हुआ जो पुरुष शरीर छोडता है प्रभुपद पाता है। यहां **स्मरती** प्रयोग नहीं इस लिये क्या स्त्री को प्रभुस्मरण कर शरीर नहीं छोडना चाहिये? या वह परमपद नहीं पायेगी? चतुर्थ श्लोक में '**मनुष्याणाम्**' पद है जिनका ऐसा अर्थ होगा कि 'नाश हो गये हैं कुल के धर्म जिन मनुष्यों के वे मनुष्यों का नरक में नियत पूर्वक निवास होता है' इस श्लोक में **मनुष्य** शब्द है तो इससे क्या स्त्रियां कुलधर्म के नाश से नरक में नहीं पडेंगी? कहिये इनके सामने आपका क्या प्रत्युत्तर हैं?

निषेधक—इस परसे तो हमको मानना ही पडता है कि पुंल्लिङ्ग वचन होते हुए भी स्त्रीलिंग का ग्रहण होता है। किन्तु मनुष्य वा पुंल्लिग निर्देश से श्रौत-स्मार्त धर्म कर्म से स्त्रियों का ग्रहण हो सक्ता है ऐसा कोई आर्ष विधान है?

विधायक—अवश्यमेव । देखिये मीमांसा दर्शन में महात्मा जैमिनि लिखते हैं—

जातिं तु बादरायणोऽविशेषात् तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात् ॥ अध्याय० ६ पाद० १ सू० ८॥

तु शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति के लिये है । अर्थात् व्यासमुनि का यह मन्तव्य है कि जाति (वर्ग Class) अर्थ की अविशेषता (समानता) से स्त्री भी मनुष्यजाति में होनेसे संस्कार, पठनपाठन तथा यज्ञादिक कर्मों में स्त्री का भी ग्रहण—अधिकार हो सक्ता है । इस सूत्र पर **शबराचार्य** का भाष्य भी देते हैं—

जातिं तु बादरायणोऽधिकृतां मन्यते स्म । किन्तर्हि ? स्वर्गकामशब्देनोभावपि स्त्रीपुंसावधिक्रियेत इति । अतो न विवक्षितं पुंल्लिङ्गमिति । कुतः ? अविशेषात् । स्वर्गे कामो यस्य, तमेष लक्षयति शब्दः । तेन लक्षणेनाधिकृतो यजेतेति शब्देन उच्यते । तत्र लक्षणमविशिष्टं स्त्रियां पुंसि च । तस्माच्छब्देनोभावपि स्त्रीपुंसावधिकृताविति गम्यते ।

अर्थात् "मुनि बादरायण (व्यासदेव) जाति को अधिकृत मानते हैं । इससे क्या ? **स्वर्गवामो यजेत** स्वर्ग कामनावाला यज्ञ करे यहां स्वर्गकाम शब्द से दोनों स्त्री पुरुष यज्ञादिक में अधिकारी होते हैं । इस लिये पुंल्लिग विवक्षित नहीं है । क्यों ? अविशेष होनेसे । जिनकी स्वर्ग में कामना हो उनको ही शब्द लक्ष कर रहा है । उस लक्षण से अधिकृत याग करे यह भाव शब्द से कहा जाता है । यहां स्त्री पुरुष दोनों में स्वर्गकामना रूप लक्षण अविशिष्ट अर्थात् समान है । "**तस्मात्**" इस शब्द से दोनों स्त्री पुरुष को यज्ञ में अधिकार दिया जाता है यह सुविदित है" । इस प्रमाण से सिद्ध हुआ कि '**स्वर्गकामो यजेत**' यहां जैसा पुंल्लिग निर्देश से **कामा (स्त्रीलिंग)** नहीं होते हुए भी स्त्री का अधिकार होता है वैसा अन्यत्र द्विज लडकों और पुरुषों के लिये विहित **जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत** और **विवाहादि** सब संस्कारों में द्विजा लडकी और द्विजांगनाओं का भी अधिकार आ ही जाता है । **अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा, एकादशे क्षत्रियम्, द्वादशे वैश्यम्** इत्यादि पुंल्लिग विधानों में ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व और वैश्यत्व जातिविशिष्ट ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या लडकी तथा स्त्रियों का भी ग्रहण करना चाहिये । अर्थात् आठवें, अगियारवें और बारहवें वर्ष में अनुक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिव, तथा वैश्य ये द्विज लडका और लडकी दोनों का उपनयन संस्कार होना चाहिये । आर्ष संस्कृत भाषा का पठन-

पाठन वन्द हो जानेसे उपर्युक्त परिपाटी आज हम लोगों को नवीन प्रतीत होती है परन्तु प्राचीन ऋषिमुनि तो बराबर जातिसामान्य से दोनों का ही ग्रहण करते रहे और इसलिये स्त्रियों का पृथग् विधान नहीं किया। **ऋषि दयानन्द ने भी वही जैमिनि** तथा **बादरायणादि** पूर्वाचार्यों की सनातन आर्ष-मर्यादा को लक्ष में रखकर संस्कार विधि में लडकियों की पृथग् विधि नहीं वतलायी । क्यों बतलावें ? वह तो कहते रहते थे कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषिमुनि का जो मत है वह उनका मत है इस लिये–' **जातिं तु बादरायणोऽविशेषात्......अविशिष्टत्वात्**' इस सूत्र को उन्होंने भी मान दिया है। अत: कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १० में जो यह लिखा है कि 'बल्कि स्वामी दयानन्दजी रचित संस्कारविधि नामक पुस्तक में भी (स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि) न होनेसे कदापि मानने योग्य नहीं हो सक्ती" इसका भी समाधान होगया। देखिये न **मनुमहाराज** ने भी सब संस्कारों में पुंल्लिग निर्देश ही किया है तो पुन: सनातनधर्मी इससे लडकियों का ग्रहण क्यों करते हैं ? यथा—

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मनु० २।२९।।

नाभिछेदन से पूर्व पुरुष का जातकर्म संस्कार करे। यहां **पुंस:** शब्द है नकि **स्त्रिया:** वा **कन्याया** फिर सनातनियों के पक्ष में लडकी का जातकर्म संस्कार कैसे हो सकता है ? पुन:

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् । २।३०।।

दशवें या बारहवें दिन **अस्य** उस लडका का नामकरण संस्कार करे। यहां भी अस्य पद से पुंल्लिग विधान है फिर नामकरण संस्कार में कन्या का अधिकार कैसे होगा ? इस हिसाब से तो सनातनधर्मियों को अपनी लडकी का नाम ही नहीं रखना चाहिये क्यों कि लडकी के लिये पृथग् विधान नहीं।

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि ।।

चतुर्थ मास में बालक का निष्क्रमण–घर से बाहर हिराने फिराने का और षष्ठमास में अन्नप्राशन संस्कार करे। यहां भी **शिशु:** पुंल्लिग है, स्त्री वाचक **शिशु** का नहीं। इसलिये सनातनियों को चाहिये कि वे न लडकियों का निष्क्रमण करें कि न तो उनका अन्नप्राशन संस्कार करें। पृथग् विधि नहीं होने से भूख से ही मार दिया करें। बस फिर सनातनियों की ठीक नि:स्त्री (स्त्री रहित) सृष्टि वन सकती है और **'सनातन धर्म की जय'** भी अच्छी बोली जा सकती है। आगे मनु जी कहते हैं कि

चडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सबका चूडाकर्म धर्म से करना चाहिये। यह संस्कार लडका लडकी दोनों का किया जाता है। क्योंकि **द्विजाति** पद पडा हुआ है अतः जात्यविशेष से दोनों का ग्रहण होता है। तत्पश्चात्—

> **गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम् ।**
> **गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ।।**

गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, अगियारवें वर्ष में क्षत्रिय का और बाहरवें वर्ष में वैश्य कां उपनयन संस्कार करे। जिस प्रकार अन्य सब श्लोकों में पुरुष लिंग का निर्देश होते हुए भी साथ कन्याओं के संस्कार किये जाते हैं इसी प्रकार **जाति तु बादरायणः** इस सूत्र प्रमाण से कन्याओं का उपनयन संस्कार भी अवश्यमेव होना चाहिये अन्यथा—**सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ।।** मनु० २।३९। उपनयन से रहित गायत्री से पतित होने से उनकी व्रात्या संज्ञा होती है और आर्यों से निन्दित बनते हैं। बस स्त्रियों को भी व्रात्यत्व प्राप्त न हो और शिष्टों से निन्दिता न बनें इस लिये उन को यज्ञोपवीत अवश्य देना चाहिये। अन्यथा यम और हारीत–स्मृति का विरोध हो जायगा तथा स्त्रियों को व्रात्यत्व–शूद्रत्व प्राप्त होने से सब प्रजा शूद्र हो जायगी और वर्णसंकरत्व प्रसंग प्राप्त हो जायगा क्यों कि हारीत ने ही कहा है कि—**न शूद्रसमाः स्त्रियः । तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्य्याः । न शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते इति ।।** अतः उपनयन संस्कारविहीन स्त्री सावित्री-पतिता है, शूद्रा है। व्रात्या माता से व्रात्य अर्थात् संस्कारभ्रष्ट प्रजा होगी और वह बात आर्यों को न इष्ट थी न अब है। बस ये सब बातों का पूर्वापर से याथातथ्यतः विचार करते मनु महाराज भी अपनी स्मृतिवर्षा से हारीत और यमाचार्य के वचन प्रवाह में एक रस हो गये। क्यों न हों? प्राचीन निष्पक्षपात महात्माओं के मौल वचनों में विरोध नहीं हो सक्ता। किन्तु पीछे से स्वार्थियों ने अपनी मिलावटों से विरोध—लीला फैला दी।।

निषेधक—अरे क्यों व्यर्थ अपनी टांयटांय नहीं छोडते? आगे तो पढो, मनुजी क्या कहते हैं?

> **अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।**
> **संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ।।२।६६।।**

अर्थात् स्त्रियों की शरीरशुद्धि के लिये (उपनयन के सिवाय) और सब संस्कार

(जो उन्होंके लिये शास्त्रों में कहे हुए हैं) यथासमय यथाक्रम से करे परन्तु वेदमन्त्र बिना पढे करे। (कन्योप–निषेध पृष्ठ १६.)

विधायक—निषेधकजी ! हम टांय-टांय नहीं करते किन्तु शास्त्रार्थ से आपका मुंह बन्द करते हैं जिनका कोई जवाव आप नहीं दे सक्ते। प्रथम तो इस श्लोक में **'उपनयन के सिवाय'** और **'जो उनके लिये शास्त्रों में कहे हुए हैं'** ये दो वाक्य मिलाकर निषेधकजी ने अपनी धूर्ततायुक्त पण्डितता का पूरा परिचय दे दिया। निषेधक ने देखलिया कि मनुजी ने गर्भाधान से लेकर उपनयन–केशान्त संस्कार पर्यन्त सब संस्कार पुंल्लिग निर्देश अविवक्षित करके तीनों वर्णों के पुत्र पुत्रियों के लिये दे दिये और कहीं भी स्त्रियों का पृथक् नाम लेकर अधिकार रद्द नहीं किया तब निषेधकजी का कोई वैसा ही मध्यकालिक स्वार्थी गुरु ने **"अमन्त्रिका तु"** यह श्लोक प्रक्षिप्त घुसाड दिया और उनकी देखा देखी फिर प्रक्षिप्त का भी अर्थ करते हुए 'उपनयन के सिवाय' इत्यादि अपनी ओर से निषेधकजी ने और प्रक्षिप्तता कर डाली। पौराणिकों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये कौन-कौन से आर्षग्रन्थों को प्रक्षिप्तता से नहीं बिगाडा ? वही वेईमानी भरे संस्कारवश होकर भाषान्तरों में भी मिथ्या मिलावट करनेमें वे लोग लज्जा नहीं मानते। **तुष्यतु नाम दुर्जनः** इस न्याय से उपर्युक्त प्रक्षिप्त श्लोक में भी स्त्रियों के लिये उपनयन का जरा भी निषेध नहीं। **अशेषतः** पद से पुरुष की भांति स्त्री के लिये सम्पूर्ण संस्कारों का विधान किया गया है। 'उपनयन सिवाय' यह प्रापञ्चिक मिलावट का कोई पुष्टिकारक भाव श्लोक में नहीं, अतः निषेधक के प्रमाण से ही अमन्त्रक भी कन्योपनयन–संस्कार तो सिद्ध हो गया। चलो अच्छी बात है जहांतक उपनयनसंस्कार न हो वहां तक अमन्त्रक कार्य हो उस के पश्चात् **यमाचार्य** के कथानुसार–**अध्यापनं च वेदानां साविस्त्रीवाचनं तथा** होंगे ही। यज्ञोपवीत संस्कार के पूर्व तो पुरुष भी मन्त्र का पठनोच्चारण नहीं कर सक्ता यह बात आगे **मनु** और **सुमन्तु** की ही स्मृति से विदित हो गई है। एवमस्तु हमारी कन्याएं भी लडकों के साथ वह बात मानने को तैयार हैं। किन्तु **'अमन्त्रिका'** यह प्रक्षिप्त कथन ही अयुक्त है क्यों कि इससे अन्य आर्ष स्मृति और कल्प ग्रन्थों से विरोध उत्पन्न होता है। अपनी स्मृति में **याज्ञवल्क्य** कहते हैं कि **स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः** ॥ अ० २। १२। अर्थात् स्त्रियों का विवाहसंस्कार मन्त्रपूर्वक होना चाहिये। **ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासममुष्यासाविति पतिनाम गृह्णीयादात्मनश्च** ॥ १ ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का। ३। उसपर भाष्यकार लिखता है '**सा खल्वेवमुक्ता वधूर्ध्रुवमवलोक्य ध्रुवमसि–इत्येतंमन्त्रं पठति**'॥ अर्थात् वह वधू ध्रुव को देखकर **'ध्रुवमसि'** इस मन्त्र को पढे और पति का तथा अपने नाम का उच्चारण करे॥ वहां साफ साफ वधू के लिये मन्त्र पढने का विधान है फिर **अमन्त्रिका** कैसे कही जा सक्ती है ?

पदा प्रपद्य पन्थानं पतियानं संजपेद्वधूः ।। गृह्यसंग्रहः ।।२८।।

वधूश्चरणेन कटप्राप्तेरनन्तरं पदा कटं प्रवर्तयन्तीत्येतत् । पन्थानं पतियानं–पथि लिंगं प्रमे पतियानः—इति मन्त्रं संजपेत् ।। भाष्यकार लिखता है कि वधू 'पन्थानं पतियानं' मन्त्र को पढे ।

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत । श्रौ० सू० इस मन्त्र को पत्नी पढे । वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत् ।। श्रौ० सू० पत्नी को वेद देकर बंचवावे । शांखायनकल्प में भी प्राचार्य लिखते हैं घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणं वेदो दधातु वाजिनमिति वेदे पत्नीं वाचयति ।। शांखा० श्रौ० १ । ५ ।

'घृतवन्तं' आदि वेदमन्त्र वेद में से पत्नी को बंचवावे । इस प्रकार ये सब प्रमाण विवाहादिकाल में वधू तथा यजमानपत्नी को वेदमन्त्रों का पठनोच्चारण का सर्वांश में अधिकार देते हैं, पुन: इससे विपरीत कहना और करना अनार्यों का कार्य है । जब विवाहादि संस्कारों में मन्त्रपाठ तथा उच्चारण विहित हुए तब अर्थापत्ति से यज्ञोपवीत का धारण भी सिद्ध होता है, क्योंकि नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते "जब तक यज्ञोपवीत की मौञ्जी न बंधे तब तक वेद का उच्चारण न करे" ।। यह सुमन्तु का प्रमाण कन्योपनयन निषेध में ही दिया गया है ।

निषेधक—अरे तो भी कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १६ में पढिये तो सही, मनुजी का दूसरा श्लोक क्या है ।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरो वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ।। २।।६७।।

"विवाह नामक संस्कार ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार है, इसमें पति की सेवा ही गुरुकुल में वास है और घर के काम ही उन्होंकी दोनों समय का होमरूप अग्नि की सेवा है ।" अब तो भगवान् मनु ने भी स्त्रियों के लिये सब संस्कार वेदमन्त्रवर्जित सिद्ध कर विवाह ही उन्होंका यज्ञोपवीत············इत्यादि ठहराया, जिससे सभी शास्त्रों की एक राय सिद्ध हो गई' ।।

विधायक—शोक है कन्योपनयन निषेधक के संस्कृतपाण्डित्य पर और उनकी चौर्यान्ध दृष्टि पर । परन्तु उस दीन की क्या गति ? उसने तो आंखें मींचकर द० ति० भास्कर जैसे किसी अनपढ के ग्रन्थ में से सारे के सारे प्रमाणों की तथा इनके मनगढंत भाष्यों की चोरी कर ली और अपने नाम पर पृथक् निबन्ध छपवा दिया ।

किन्तु आखिर तो भेडिया घसाणों की पोल खुल ही जाती है। भला उपर्युक्त श्लोक से निषेधक का पक्ष कैसे पुष्ट हो सक्ता हैं ? हां, हमारा तो अवश्य हो सक्ता हैं। जैसा कि उपर्युक्त श्लोक का सच्चा अर्थ यों हो सक्ता है कि—स्त्रियों के लिये यह यह संस्कार वैदिक सुना जाता है। विवाह सम्बन्धी संस्कार विधि वैदिक है, पतिसेवा वेदप्रतिपादित है, गुरुकुलवास वेदविहित है, गृहाश्रमधर्म वेदसिद्ध है तथा अग्निहोत्र करना वेदमण्डित है। बस, यहां तो विवाहादि संस्कार **वैदिकः स्मृतः** का स्पष्ट विधान है। फिर इससे विपरीत "विवाह नामक संस्कार ही स्त्रियों का उपनयन है" इत्यादि जो निषेधक ने अन्य किसी का कहा सुना लिख तो मारा है किन्तु उपर्युक्त श्लोक में **उपनयन** शब्द वा इनका जिक्र ही कहां है ? और भी सब स्थान में "ही" "ही" घुसेड मारे हैं तो मूल में 'ही' वाचक एक भी '**एव**' शब्द नहीं है। यों 'ही' लगाने से अर्थ का अनर्थ किया गया है। '**स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः**' यह पद होते हुए भी 'भगवान् मनु ने सब संस्कार वेदमन्त्रवर्जित सिद्ध कर दिया" यह कहना सूर्य के होते हुए भी अन्धेरा माननेवाला उल्लूपना नहीं तो और क्या है ? कविने ठीक कहा है **नोलूकेन विलोक्यते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्** ।। दिन में भी यदि उल्लू नहीं देखते तो इसमें सूर्य का क्या दोष हो सक्ता हैं ? इसप्रकार हारीत यमाचार्य तथा अन्य कल्पग्रन्थों के कर्त्ताओं की भांति मनु महाराज स्त्रियों के लिये सब संस्कारों का उपरके श्लोकों से विधान करते चले आये उन्हींके कथन में **वदतो व्याघात** दोष बतलाना यह मनुजी की ही हांसी करना है। कहीं ऐसा पाठ देखने में आता है— **वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः** ।। वहां ऐसा अर्थ होता है कि— **वैवाहिको विधिर्यो वक्ष्यमाणः स औपनायनिकः उपनयनानन्तरं सिद्धस्तस्मात्परः श्रेष्ठः समन्त्रक इत्यर्थः** ।। अर्थात् विवाहसम्बन्धी विधि जो कही गयी वह उपनयन के बाद सिद्ध होती है, इसलिये श्रेष्ठ मन्त्रसहित होनी चाहिये।। देखिये कन्योपनयननिषेध पृष्ठ १६ पंक्ति ७ में ही व्यासोक्ति—**विवाहे मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश** ।। **इति** ।। भाषार्थ पंक्ति २१ 'दशवां विवाह वेदमन्त्रों से होता है' ऐसा स्वयं लिखते-लिखते भी 'वेदमन्त्र रहित' वेद मन्त्र रहित चिल्लाकर कैसे सभी शास्त्रों की एक राय सिद्ध कर सक्ते हैं ? निषेधकजी परस्पर विरुद्ध वातें लिखकर अपना ही मुखभञ्जन कर रहे हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है—

कुरुते स्वमुखेनैव वहुधान्यस्य खण्डनम् ।
नमः पतनशीलाय मुसलाय खलाय च ।।

अर्थात् अपने ही मुख से वहुधा अन्य का खण्डन करने वाले ऐसे पतनशील मुसल और खल को नमस्कार ।।

निषेधक—यह तो ठीक किन्तु कन्योप-निषेध पृष्ठ १६ में **तवंताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः ।।** इत्यादि प्रमाणों का क्या उत्तर ?

विधायक—ये कोई प्रमाणिकग्रन्थों के वचन नहीं । पुनः अन्य श्रौत स्मार्त वचनों के विरुद्ध होने से मान्य नहीं और मानो तो भी इन में कोई कन्योपनयन निषेध का वाक्य वा जिक्र नहीं ।

निषेधक—अच्छा यह बात तो मानी । किन्तु आपका तो यह दावा हैं कि मूलरूप से वेदोक्त बात को मानना तो फिर कन्योपनयन का प्रतिपादक कोई वेदमन्त्र भी है ?

विधायक—यह दावा तो आपका भी है । जिन प्रमाण से आप पुरुषों के लिये ही मानेंगे उसी प्रमाण से **जातिं तु बादरायणः** यह जैमिनि तथा व्यास वचन से और **पुमान् स्त्रियां । १ । २ । ६७ ।।** यह **पाणिनीय व्याकरण-सूत्र** के बलसे हम स्त्रियों के लिये भी मानेंगे ।। निषेधकों के संतोष खातिर खास वैदिक प्रमाण भी देते हैं । किन्तु आपको तो कमलाकर और माधव के कथन से वेदों की बातें **'इति तु युगान्तरम्'** हो जाती हैं इनका क्या उपाय ?

निषेधक—अजी बस, अब यह बात जाने दीजिये ।

विधायक—अच्छा तो सुनो अथर्ववेद में भगवान् आज्ञा देते हैं कि—

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।। का० ११। सू० ५।१८।।

अर्थात्—कन्या अविवाहिता स्त्री ब्रह्मचर्य सेवन से उपनीत हो वेदादिशास्त्रों को पढकर पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण अवस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवे ।। इस मन्त्र में कन्या के लिये ब्रह्मचर्य का विधान है और ब्रह्मचर्यव्रत में उपनयन पूर्वक ही वेदादि का अध्ययन हो सक्ता है अन्यथा नहीं ।।

निषेधक—(कन्योप-निषेध. पृष्ठ १६-२१) वाह बहोत ही सफल हुए!! भाई ! आपके पेश किये इस मन्त्र में 'वेदादि शास्त्रों को पढकर..... इत्यादि' पदों-वाला लम्बा चौड़ा अर्थ आपने कौन से पदों में से निकाला है ? इस श्रुति का यही अर्थ प्रसंगानुकूल और शास्त्र सम्मत है कि-'शुद्धता पूर्वक वीर्य की रक्षा करके जवान हुए पति को कन्या वरे वा प्राप्त होवे' । इति ।।

विधायक—वाह! धन्य है आपकी शास्त्रपारांगतता को । आपने कभी वेदों के दर्शन तक नहीं किये होगें फिर उन के शब्दों की पृथक्-पृथक् निरुक्ति करके अर्थ लगाना तो कहां ? भला आपका किया हुआ अर्थ कैसे शास्त्र सम्मत हो सकता हैं जब

आपके ही परमपूज्य माननीय सनातनी टीकाकार **सायणाचार्यजी** स्वयं इस ऋचा पर इस प्रकार भाष्य करते हैं—**कन्या अकृतविवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ति तेन ब्रह्मचर्येण युवानं युवत्वगुणोपेतं उत्कृष्टं पतिं विन्दते लभते ॥** कन्या अर्थात् विवाह नहीं की हुई ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य अर्थात् जितेन्द्रियत्व पूर्वक वेदाध्ययनादि व्रत को धारण करती हुई उसी ब्रह्मचर्य से युवा अर्थात् युवत्वगुण वाले उत्कृष्ठ–श्रेष्ठ पति को प्राप्त होवे। यहां सायणाचार्य ने ही स्पष्ट **ब्रह्मचर्यं चरन्ति** कन्या लिखकर कन्याओं के लिये ब्रह्मचर्यव्रत का विधान किया। ब्रह्मचर्यव्रत आया तो उस के साथ यज्ञोपवीत और वेदाध्ययनादि भी सिद्ध हो गये।

निषेधक—हमने तो सायण भाष्य कभी नहीं पढा था परन्तु तो भी आपने ब्रह्मचर्य का इतना लम्बा चौडा अर्थ कौन से भाष्य के आधार पर किया ? "वाह वडी हिम्मत की! ! क्या 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ वेद पढना और यज्ञोपवीत पहनना आदि आप किसी कोष में दिखा सकते है ? (कन्योप–निषेध–पृष्ठ १९) ब्रह्मचर्य का अर्थ 'वेद पढना और यज्ञोपवीत पहनना' करना वेदशास्त्र विरुद्ध युक्तिहीन महामिथ्या कभी मानने योग्य नहीं है। शुद्धतायुक्त वीर्य की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ समस्त शास्त्रसम्मत युक्तियुक्त सिद्ध है" (कन्योप–निषेध–पृष्ठ २०)।

विधायक—निषेधक जी! आप को क्या ? आपको ऐसा वैसा लिखकर अनपढ जाटों में अपनी पण्डिताई छांटते रहना है। सात पीढ़ी से ब्रह्मचर्य शब्द वा उसके अर्थ का श्रवणधारण ही नहीं किया दिखता। करते भी कैसे ? करने से **अष्टवर्षा भवेद्गौरी** वाला बालविवाह प्रतिपादक सनातनधर्म पर आघात पहुंच जाता और इस लिये ही बैल के भाई बनकर ब्रह्मचर्य का "मात्र वीर्यरक्षा ही" अर्थ करना **गाव: कुलं यस्य स गोकुल:** के पिता की युक्ति युक्त ही है। हमारे किये ब्रह्मचर्य के अर्थ के लिये पढिये आपके वही गुरुवर्य्य महाराज सायणाचार्यजी को वह, **ब्रह्मचर्येण कन्या** की पूर्व की ही ऋचा—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ११।५।१७॥

इस पर भाष्य करते हुए ब्रह्मचर्य शब्द का कितना लंबा चौडा अर्थ कर हमारे पक्ष को पुष्टि दे कर आप पर विजय वतलाते हैं ! !

ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थम् आचार्यम् आचरणीयं समिदाधान-भैक्षचर्योर्ध्वरेतस्कत्वादिकं ब्रह्मचारिभिरनुष्ठीयमानं कर्म ब्रह्मचर्य्यम्। तेन ब्रह्मचर्येण इत्यादि ॥

अर्थात—ब्रह्म जो वेद उसके अध्ययन के लिये आचरने योग्य समिदाधान (अग्निहोत्र) भिक्षाचर्या तथा ऊर्ध्ववीर्यता आदि ब्रह्मचारियों से अनुष्ठान करने योग्य जो कर्म उसको **ब्रह्मचर्य** कहते हैं। उस ब्रह्मचर्य रूप तप से राजा राष्ट्र का पालन करता हैं और आचार्य उसी ब्रह्मचर्य के नियम से संयत ब्रह्मचारी की इच्छा करता है। अब तो निषेधकजी का नाक उनके ही पिता सायणजी ने काटा उसको कैसे छुपावेंगे ? कन्योपनयन निषेध पृष्ठ १९-२० में और बहुत कुछ आर्यसमाजियों को भला बुरा सुनाया गया है यह सब अब उनके ही आचार्य पर जा पड़ता है। अब आप कोश पूछते हैं तो पढिये **अमरकोश—वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म** ॥ २३। ११४ ॥ ब्रह्म यह एक नाम वेद, चैतन्य, और तप का है। वही कन्योप—निषेध पृष्ठ १८ में स्वयं निषेधक ने सुमन्तु तथा मनु के वाक्य **'नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म'** में ब्रह्म का अर्थ वेद किया है॥ **ब्रह्मचारीष्णंश्चरति** इस अथर्व की ऋचा पर भाष्य करते सायणाचार्य कहते हैं **ब्रह्मणि वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुं शीलम् अस्य स ब्रह्मचारी** ब्रह्म अर्थात् वेदात्मक अध्ययन में गमन करनेका जिसमें शील (शक्ति) है वह ब्रह्मचारी। अब उपनयन (यज्ञोपवीत) यह ब्रह्मचर्यव्रत का मुख्य चिह्न है जिसके विना कोई कर्म या व्रत का उपदेश नहीं दिया जा सक्ता । जैसा कि मनुजी कहते हैं:—

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥२।१७०॥

अर्थात् यज्ञोपवीत से चिह्नित होना या उसका ब्रह्म-वेद में जन्म होना है मतलब यह है कि वेदग्रहणार्थ जन्म होना यज्ञोपवीत नामक है।

न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥२॥१७१॥

मौञ्जीबन्धन से पूर्व कोई (श्रौतस्मार्तादि) कर्म नहीं हो सक्ते।

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥२॥ १७३॥

उपनयन किये हुए को व्रत का उपदेश इष्ट है। इन सब बातों से तथा सायणाचार्य ने भी जिन-जिन व्रत कर्म को ब्रह्मचर्य अर्थ में समाविष्ट किया हैं वे सब यज्ञोपवीतमूलक हैं । अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत का मुख्य अधिकारचिह्न (medal) यज्ञोपवीत ही है। अत: ब्रह्मचर्य में उपनयन अर्थ का भी समन्वय हो सक्ता है। मनुजी आगे इस बात को और स्पष्ट कर देते हैं।

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥२॥ १७४॥

जो जिसको चर्म, सूत्र (उपनयन), मेखला, दण्ड और वस्त्र (उपनयनमें) कहे हैं वही उसको व्रतों में भी जानो। ब्रह्मचर्य के उन व्रतों में उपनयन आया और इसके न होनेसे व्रतभंग होगा इसलिये ब्रह्मचर्य अर्थ से यज्ञोपवीत का साहचर्य है। इसी वात को **आपस्तम्बीय धर्मसूत्र स० १८९४** वम्बईमें मुद्रित द्वितीयावृत्ति १।१।३ पृष्ठ ७ में सिद्ध की गई है—**अथ ब्रह्मचर्यविधिरित्यारभ्य यानि व्रतान्युक्तानि तद्वान् ब्रह्मचारी स्यात्**। अर्थात् ब्रह्मचर्य विधि के आरम्भ से जितने व्रत कहे गये हैं उनसे युक्त ब्रह्मचारी कहलाता है। वस, इससे भी पाया गया कि मनुकथित ब्रह्मचर्यव्रतान्तर्गत उपनयनादि से युक्त ब्रह्मचारी ही है, अन्यथा नहीं। इसमें भी ब्रह्मचर्यव्रत तथा तद्वान् ब्रह्मचारी के अर्थ में उपनयन का घनिष्ट सम्वन्ध है। उपनयनको **ब्रह्मसूत्र** भी कहते हैं। यह शब्द स्वयं सिद्ध कर रहा है कि ब्रह्म नाम वेद इसके अध्ययन के लिये जो अधिकार चिह्न धारण किया जाय वह ब्रह्मसूत्र है। ब्रह्मचर्य और ब्रह्मसूत्र की आत्यन्तिक एकार्थरूपता प्रत्यक्ष है। **ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥ मनु० २ ॥ ३७ ॥** ब्रह्मवर्चस की इच्छा करने वाले विप्र का पांचवें वर्ष में उपनयन करे। बस, ये सव व्युत्पत्ति, कोश, स्मृति, सूत्र तथा सायणाचार्यादि के प्रबल प्रमाणों से हमने **ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्** इस श्रुतिश्रुत ब्रह्मचर्य शब्द के जो अर्थ किये हैं वे सब शुद्ध कर दिखलाये। अतः ऐसा **ब्रह्मचर्यं चरन्ति** कन्या का उपनयन सर्वथा वेदविहित ही हुआ। परन्तु आपका कहा हुआ ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ मनुष्य जाति के लिये 'वीर्य की रक्षा करना मात्र ही' समस्त तो क्या, किन्तु एक भी शास्त्र सम्मत नहीं और युक्ति तो आपकी गोकुल—पिताजी (अनड्वान्) पूरती ही है ॥

निषेधक—अरे, परन्तु ब्रह्मचर्य के ऐसे अर्थ करोगे तो फिर आगे लिखा है कि—

अनडवान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति। अथर्ववेद ११।५।१८

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ अथर्ववेद ११।५।२१॥

अर्थात्—"बैल ब्रह्मचर्य से चारा खाता है, घोड़ा ब्रह्मचर्य से घास खाता है तथा पार्थिव दिव्य पदार्थ वन के और ग्राम के जीव पंखरहित और पंखवाले यह सब ब्रह्मचारी हैं। अव यदि आप ब्रह्मचर्य का अर्थ वेद पढना और यज्ञोपवीत पहनना ही करें तो बताइये कि बैल, घोड़ा, बिल्ली, कुत्ता, पक्षी आदि भी वेदपाठी यज्ञोपवीतधारी क्यों नहीं हुए?……क्या ईश्वर भूल गया? अथवा आपकी वुद्धि में जमाने का चमत्कार हुआ? (कन्योप–निषेध–पृष्ठ २०)

विधायक—गोकुल पिताजी! हमारी बुद्धि में तो ऋषि दयानन्द की कृपा से और उनकी बतलाई वैदिक शिक्षा से अवश्य चमत्कार हुआ ही है, परन्तु आपकी बैल अश्वों की युक्ति का चमत्कार इस जमाने में जरूर नया देखते हैं। हमने आपकी तरह अर्थ करने में 'ही' 'ही' 'ही' कहीं भी नहीं लगाया। आपने 'वीर्य की रक्षा करना ही' ब्रह्मचर्य का अर्थ किया जिसको आपके ही परमपूज्य पितामह सायणाचार्य ने उन्मूलन कर दिया। अब आप उनके ही पास जा कर पूछिये कि उनका किया हुआ अर्थ आप के सगे स्नेही बैल, घोड़ा, बिल्ली, कुत्ता आदिकों के लिये कैसे घट सकता है? क्या बैल घोड़ा आदि वेदाध्ययन, समिदाधान (होम–हवन), भैक्षाचर्य आदि ब्रह्मचारियों के अनुष्ठान करने योग्य वैदिक कर्म कर सक्ते हैं? ब्रह्मचर्य का आपका किया अर्थ 'मात्र वीर्य रक्षा करना ही' नहीं करके वेदाध्ययन, ब्रह्मसूत्रादिव्रत कहने वाले श्रुति, स्मृति–सूत्रकार सब भूल गये? अथवा आपकी बुद्धि में आपके उपास्य कलियुग का चमत्कार हुआ?

निषेधक—अच्छा तो आप ही बताइये कि ब्रह्मचर्य शब्द की संगति उन बैल, घोड़ा और पक्षियों में कैसे लग सक्ती है?

विधायक—निषेधकजी! जरा बुद्धि को घिसकर तीक्ष्ण किया करो। जहां कहीं अमुक शब्द का प्रयोग मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब पर एकसा किया गया हो वहां उसके अर्थ का सम्बन्ध सम्भावना पूर्वक अलग विचारना होगा अन्यथा अर्थ हानि होगी। जैसी कि उपर्युक्त श्रुति में एक ब्रह्मचर्य शब्द मनुष्यजाति तथा तद्भिन्नजाति परत्वे आया हैं। जब वह शब्द राजा, आचार्य, ब्रह्मचारी, कन्या, युवा आदि मनुष्य जाति के साथ सम्बद्ध होगा तब उसके अर्थ वेदादिज्ञान, ब्रह्मचर्याश्रम में विहित धर्म कर्म, उपनयनादि चिह्न, व्रत यथा वीर्यरक्षा भी होंगे। क्यों कि **मननान्मनुष्यः। विशिष्टबुद्धिमत्त्वं मनुष्यत्वम्**। अर्थात् जो मननशील है वह मनुष्य है। विशिष्ट-बुद्धिमत्त्व जिसमें हो वह मनुष्य है। अतः विधि-निषेध की धर्माधर्मयुक्त मर्यादा तथा शिक्षा उसके लिये ही है पशु पक्षियों के लिये नहीं। इस लिये ब्रह्मचर्याश्रमधर्म विहित मर्यादा के सब कर्म–विधान ब्रह्मचर्यं चरन्ती कन्या और युवा के लिये किये गये हैं। परन्तु पशु पक्षी आदि मात्र भोगयोनियां हैं। न उनमें सूक्ष्मबुद्धि है न विशिष्ट ज्ञान है इस लिये उनके लिये मात्र स्थूल देहसम्बन्धी वीर्य की ही प्रशंसा की गई है। यदि कोई कहे कि स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी आदि सब शिक्षा से सुधरते हैं तो वहां स्त्री पुरुषों के लिए शिक्षा का अर्थ पठनपाठन और दण्ड भी होगा किन्तु तद्भिन्न जाति के लिए पठनपाठन नहीं किन्तु मात्र दण्ड ही। हमको शोक है कि ऐसी सीधीसी बात भी निषेधकजी की बुद्धि में नहीं उतरी और खामुखा वितण्डावाद कर दिया। पवित्र

कन्याब्रह्मचर्याश्रम-कल्प वृक्ष को छिन्नभिन्न करनेवाले गोकुल जी के ही पिता ठहरे उनसे और कौनसी आशा की जा सक्ती है ? शास्त्रों के अर्थ करने में तर्कपूर्वक प्रकरण सोच समझकर संगति लगानी चाहिये। **बृहस्पतिजी** ने अपनी स्मृति में कहा है कि—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारेण धर्महानिः प्रजायते ॥

अर्थात्—केवल शास्त्र के ही आश्रय से निर्णय नहीं करना चाहिये क्यों कि युक्तिहीन विचार से धर्म की हानि होती है। **मनुजी** भी कहते हैं **यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः** । जो तर्क से अनुसन्धान करता है वही धर्म को जानता है दूसरा नहीं।

निषेधक—और भी कोई प्रमाण वेदों से दे सक्ते हो ? जहां तहां '**ब्रह्मचर्येण कन्या**' का ही पिंजण पिंजते रहते हो।

विधायक—बहुत दे सक्ते हैं। देखिये कन्योप-निषेध पृष्ठ १८ में ही मनु और सुमन्तु के वचन दिये हैं कि "जब तक यज्ञोपवीत की मौञ्जी न बन्धे तब तक वेद का उच्चारण न करे"। अच्छी बात है,तब वेद का उच्चारण तो क्या परन्तु पुरुष ऋषिवत् स्त्रियां भी वेदमन्त्रों की द्रष्टी ऋषिकाएं हुई है।

निषेधक—ऋषि या ऋषिका किसको कहते हैं ?

विधायक—सुनिये, **निरुक्त अ० १ पा० ६ खं० ५ में यास्काचार्य** कहते हैं कि "**साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्रादुः**" ॥ अर्थात् धर्म को साक्षात् करनेवाले ऋषि हुए जिन्होंने धर्म को साक्षात् नहीं करनेवाले दूसरों को मन्त्रों से उपदेश दिया। जैसे **मधुच्छन्दा, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि** प्रभृति मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुए हैं वैसी स्त्रियां भी ऋषिकाएं हुई हैं।

निषेधक—किन्तु यह मौखिक बात नहीं चलेगी। हमको तुम यह बतलाओ कि पुरुष ऋषि की भांति इस-इस नाम की स्त्री ऋषिकाएं इन-इन मन्त्रों की द्रष्टा हुई ॥

विधायक—अच्छाजी, खोलिये ऋग्वेद और पढ़िये—

संख्या	नाम	ऋग्वेद० मण्डल	सूक्त	ऋचा
१	रोमशा	१	२६	७
२	लोपामुद्रा	१	१७९	१–६
३	विश्ववारा	५	२८	१–६
४	शश्वती	८	१	३८
५	अपाला	८	९१	१–७
६	यमी	१०	१०	१,३,५,७,११,१३.
७	घोषा	१०	३९–४०।	१–१८
८	सूर्य्या	१०	८५	१–४७
९	इन्द्राणी	१०	८६	१–२३
१०	उर्वशी	१०	९५	२,४,५,७,११,१३,१५,१६,१८
११	दक्षिणा	१०	१०७	१–११
१२	सरमा	१०	१०८	२,४,६,८,१०,११
१३	जुहु	१०	१०९	१–७
१४	वाग्	१०	१२५	१–८
१५	रात्रि	१०	१२७	१–७८
१६	गोधा	१०	१३४	७
१७	इन्द्राणी	१०	१४५	१–६
१८	श्रद्धा	१०	१५१	१–५
१९	इन्द्रमातरः	१०	१५३	१–५
२०	शची	१०	१५९	१–६
२१	सार्पराज्ञी	१०	१८९	१–६

कहिये निषेधकजी ! अब भी कुछ शेष है ? आपके ही लिखे हुए मनु तथा सुमन्तु के **'मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) से पूर्व वेद का उच्चारण न करे'** कथन से उपर्युक्त वेदमन्त्रद्रष्ट्री ऋषिका स्त्रियों का यज्ञोपवीत अनायास सिद्ध हो गया । ये स्त्रियों ने उच्चारण तो क्या किन्तु उपदेश तक सबको दिया और वह मन्त्रोपदेश उपनयन किये विना कभी नहीं हो सक्ता था यह अर्थापत्ति से सुस्पष्ट है। अब जब साक्षात् वेदभगवान् ने ही स्त्रियों को अपना मन्त्रप्रकाश देकर अधिकृत किया और **यजुर्वेद अ० २५–मं–२–यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्यांशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥** इस ऋचा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, स्वीय स्त्री आदि तथा अतिशूद्र तक सबको **'वाग् वै ब्रह्म'** बृ० उ० १–३

ब्रह्म—वेदवाणी सुनानेकी आज्ञा दे दी फिर यह वेद भगवान् का भी विरोध करके सनातनधर्मी कहलाना मूर्खता, नास्तिकता और निर्लज्जता ही है। ये सब स्त्री जो मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाएं हुई हैं उसका उल्लेख **शौनकविरचित बृहद्देवता** में है। इस प्रकार जब वेदों में ही सूर्यप्रकाश की भांति स्त्रियों का अधिकार पाया जाता है फिर दुनियां में आजकल के निर्णयसिन्धु आदिके कमलाकर और माधव तो क्या परन्तु उनके गुरु आवे तो भी इनका वेदविरुद्ध कथन नास्तिकवचन की तरह त्याज्य है। क्योंकि **मनुजी** कहते हैं **नास्तिको वेदनिन्दकः** अपि च—

या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ता स्मृताः ॥१२।९५॥

अर्थात् जो स्मृति वेदविरुद्ध हैं और जो कुदृष्टि अर्थात् क्षुद्र पक्षपातयुक्त दृष्टि वाली हैं वे सब निष्फल और अन्धकार में ले जानेवाली हैं॥ इस प्रमाण से निर्णय-सिन्धु आदि आधुनिक मिथ्या पौराणिक भावों से भरे हुए कुदृष्टि ग्रन्थ वेदविरुद्ध होनेसे निकम्मे हैं अतः त्याज्य हैं॥ वेदातिरिक्त अन्य कल्प (कर्मप्रतिपादक सूत्र ग्रन्थ) से भी स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत की सिद्धि होती है। यथा—

प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जपेत्सोमोऽददद्गन्धर्वा-येति ॥ १९ ॥ गोभि० गृ० प्र० २। का० १

उत्तरीय वस्त्रादि से "आच्छादित तथा यज्ञोपवीत धारण की हुई कन्या को विवाह मण्डप में लावे और वर **'सोमोऽददत्'** मन्त्र को बोले॥ यह कल्पसूत्र कन्या का उपनयनअधिकार, हारीतस्मृति की सद्योवधू की भांति साफ सिद्ध कर रहा है।

निषेधक—"वाह वहुत ही फतेहयाव हुए। देखो इस सूत्र पर तर्कालङ्कार श्री चन्द्रकान्त भाष्यकार क्या सिद्ध करते हैं ? **यज्ञोपवीतिनीम्** का क्या अर्थ होता है ? यज्ञोपवीत के तुल्य जैसा यज्ञोपवीत पहिना जाता है वैसा धारण किया है उत्तरीय वस्त्र जिसने उसको (ऐसी कन्या को) यह अर्थ है'। क्योंजी हो गई जिद्दियों की टांय टांय पूरी ! "आये सींगों को किन्तु कान भी कटा गये"। गोभिलीयगृह्यसूत्र ने तो सद्योवधुओं का यज्ञोपवीत भी काटकर उनकी जगह उत्तरीय वस्त्र ही दे दिया"। (कन्योप-निषेध पृष्ठ १३-१४)।

विधायक—निषेधकजी ! कान तो तब कटता जब मूल सूत्र ग्रन्थ में स्वयं गोभिलाचार्य ही निषेध करते। आचार्य ने तो साफ-साफ **"प्रावृताम्'** और **'यज्ञो-पवीतिनीम्'** ये दो शब्द पृथक्-पृथक् लिक्खे। **प्रावृताम्** अर्थात्। **कृतोत्तरीयाम्**

उत्तरीयवस्त्र पहनी हुई और **यज्ञोपवीतं यस्यास्त्यस्मिन्निति वा यज्ञोपवीती स्त्री चेद्‌ यज्ञोपवीतिनी ताम् यज्ञोपवीतिनीम्** ।। अर्थात् जो यज्ञोपवीत धारण किये हो वह यज्ञोपवीती और यदि स्त्री हो तो यज्ञोपवीतिनी कहलाती है । व्याकरण से सिद्ध ऐसे शुद्ध सरल अर्थ को छोड़कर निष्कारण **यज्ञोपवीतवत्कृतोत्तरीयाम्** जैसा खेंचतान कर अर्थ क्यों लिया जाय ? यदि वहां ऐसा अर्थ लिया जाय तो **यज्ञोपवीतिना चान्तोदकेन कृत्यम्** । गोभि० १-१-२ यहां भी यों अर्थ करें कि **यज्ञोपवीतिना यज्ञोपवीतवत्कृतोत्तरीयेण कुमारेण** यानी यज्ञोपवीत की भांति पहिना है उत्तरीय वस्त्र जिसने और जल का आचमन किया हैं जिसने ऐसा कुमार कर्तव्यकर्म करे । किन्तु इस सूत्र पर तो वही भाष्यकार चन्द्रकान्त भी **यज्ञोपवीतं यस्यास्ति सोऽयं यज्ञोपवीती** जो यज्ञोपवीत धारण किया हो वह यज्ञोपवीत ऐसा अर्थ करता है फिर वेदादिशास्त्रों से अधिकार प्राप्त भई स्त्रियों के विषय में 'टांय-टांय' किसने की ? वही **युगान्तरम्** जैसा करने वाले आजकल के भाष्यकार ने जिनके विषय में **मनुजी ने** और जोर से कह दिया है कि—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ।।१२।।९६।।

वेद से अन्यमूलक जो ग्रन्थ हैं वे उत्पन्न और नष्ट होते हैं । वे आजकल के होने से निकम्मे और झूठे हैं । गोभिलीय सूत्र वेदविहित होने से मान्य है परन्तु चंद्रकान्त भाष्यकार का कल्पित कथन वेदविरुद्ध होने से निष्फल तथा अनृत है अतः आर्यों के लिये त्याज्य है । अब यदि **प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम्** से पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति ली जाय तो हमारा किया अर्थ ही सर्वथा समीचीन सिद्ध होता है ।। यथा—

अहतेन वसनेन पतिः परिदध्याद्—या अकृन्तन्नित्येतयर्चा, परिधत्तधत्तवाससेति च ।।१८।। गोभि० गृ० प्र० २ । का० १

'या अकृन्तन्' यह ऋचा तथा **'परिधत्तधत्तवाससा'** यह मन्त्र बोलते पति, वधू को अखण्डित नवीन वस्त्र पहिनावे । तत्पश्चात् **तामिमां** ऐसी **प्रावृतां** उत्तरीय वस्त्र पहनी हुई और **यज्ञोपवीतिनीम्** जनेऊ पहिनी हुई **वधूं** वधू को **अभ्युदानयन् —करेण करे गृहीत्वा गृहादग्नेरभिमुखीमानयन् जपेत्पतिः—सोमोददिति (चन्द्रकान्तः)** हाथ से हाथ को ग्रहण कर घर में से अग्नि के सामने लाकर **सोमोददत्** मन्त्र को पति जपे । बस, इन बातों से गोभिलीय गृह्यसूत्र का आशय हारीत स्मृति के साथ सद्योवधूओं के लिये बिलकुल एक रस हो गया; कदापि विरुद्ध नहीं । विरोध करने से **स्मृतत्यनवकाशदोष** आवे और वेदविहित कन्योपनयन संस्कार प्रति

पादक हारीत, यम, मनु आदि स्मृतियों का आनर्थक्य हो जाय जो कभी इष्ट नहीं। इसी प्रकार **स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च ।। पार० गृह० सू० पृष्ठ० ८४ बनारस में सिद्ध विनायक से मुद्रित सं० १९३६ ।।**

निषेधक—अच्छा, यह तो हमने मान लिया कि वेदादि पठन-पाठन और यज्ञोपवीतादि धारण रूप ब्रह्मचर्य तो स्त्रियों के लिये सुसिद्ध हुआ, परन्तु गृहस्थाश्रम में गृहपति की भांति पत्नी को भी क्या यज्ञयागादि में अधिकार दिया जा सकता है ?

विधायक—प्यारे भाई! यह कैसा प्रश्न है? जब यज्ञोपवीत विहित हो चुका तो फिर वह है ही किस लिये? यज्ञों की सिद्धि के लिये ही। अन्यथा आजकल के ब्राह्मणों की भांति धारण करना निष्फल है, अजागलस्तनवत् है।। पत्नी शब्द की सिद्धि ही बतला रही है कि **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ।।** अष्टाध्यायी० अ० ४–१–३३ ।। **पतिशब्दस्य नकारादेशः स्याद्यज्ञेन सम्बन्धे ।।** यज्ञ संबन्ध में 'पति' शब्द को नकार आदेश होता है और पत्नी शब्द बनता है। मतलब कि 'पत्नी' शब्द ही यज्ञ के सम्बन्ध का बोधक हैं। और यज्ञ के संयोग से यजमान की स्त्री 'पत्नी कहलाती है। **कौमुदीकार भट्टोजि दीक्षित** कहते हैं **दम्पत्योः सहाधिकारात्** । यज्ञ में दम्पती अर्थात् पतिपत्नी का सह अधिकार है।

निषेधक—ऐसा अर्थवाचक पत्नी का प्रयोग कहीं वेद में से बतला सकते हो?

विधायक—क्यों नहीं ? सुनिये—

सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभायः ।।१४।। अथर्व० ११।१।१।।

अर्थात् पति के साथ श्रेष्ठतमा पत्नी शोभन पुत्र और प्रजायुक्त होती है। ऐसी तू पत्नी को यज्ञ आ कर प्राप्त होता है। उदकपूर्ण घट को ग्रहण कर।। (सायण-भाष्य परसे) इस मन्त्र में यज्ञ प्राप्ति रूप फल बतला कर पत्नी शब्द की सम्पूर्ण सार्थकता सिद्ध कर दी।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।।१७।।
अथर्व० ११।१।१।।

निर्मल और पवित्र स्त्रियां यह यज्ञ सम्बन्धी शुभ्र जलचरु को प्राप्त होवें। पुनः यजुर्वेद के मन्त्रों में सनातनियों के मानवीय **महीधरजी** के ही भाष्य से यज्ञ में यजमान पत्नी का अधिकार पाया जाता है। यथा—

वाचं ते शुन्धामि.......चारित्रा ँस्ते शुन्धामि ॥ यजु० ६।१४॥
पशोः प्राणाञ्शुन्धति पत्नी । मुखं नासिके चक्षुषी कर्णौ नाभिं मेढ्रं पायुं पादान्स ँहृत्य 'वाचं ते शुन्धामी'ति प्रतिमन्त्रमिति ॥

(का० ६ । ६ । २-३-महीधर भाष्यतः) अर्थात् वाचं ते शुन्धामि यह एक-एक मन्त्र का विनियोग करके पत्नी मृत पशु के प्राणों तथा अन्य अवयवों को जल से धोती है ।

गणानां त्वा गणपति ँहवामहे ॥ यजु० अ० २३।१९
सर्वाः पत्न्यः पान्नेजनहस्ता एव प्राणशोधनात्प्राक् अश्वं त्रिस्त्रिः परियन्ति मध्ये पितृवत् अप्रदक्षिणं परियन्ति त्रिः त्रिभिर्मन्त्रैः ॥

यहां भी सर्व पत्नियों के लिये मन्त्र विधान किया गया है ।

निषेधक—अच्छा, अब वेदातिरिक्त और शास्त्रों से भी यज्ञ सम्बन्धी प्रमाण दिखलाओ —

विधायक—जब स्वतःप्रमाणरूप वेद ने ही कह दिया फिर अन्य की क्या आवश्यकता ? वृथा दीपो दिवाकरे । तो भी शायद आपको वेद का वचन युगान्तर विषय होगा । अस्तु लीजिये—

यज्जायायै करोति गार्हपत्य एव तज्जुहोति ॥२४॥ ऐतरेत० प्र० ८ अ० ५ ॥

स्त्रियों के लिये गार्हपत्य अग्निहोत्र करने की श्रुति में आज्ञा है फिर शतपथ काण्ड १ अ० ९ ब्रा० २ प्र० ७ का अथ त्वेदं पत्नी त्विस्र सयति से लेकर यजुषा चिनीर्षेदेतेनैव कुर्यात् । २१-२२-२३ तक मन्त्रों में पत्नी के लिये यज्ञाधिकार पाया जाता है । कामं गृह्योऽग्नौ पत्नी जुहुतात् सायं प्रातर्होमौ, गृहाः पत्नी, गृह्य एषोऽग्निर्भवतीति ॥ १५गोभि० गृ० प्र० प्र० १ का० ३ । सायंकाल और प्रातःकाल गृह्य अग्नि में पत्नी होम करे । स्त्री जो अग्निहोत्र करती है उसको गृह्याग्नि कहते हैं । क्यों कि न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ॥ गृह को गृह नहीं कहते किन्तु गृहिणी को घर कहते हैं । अतः पत्नी होम करे । इस सूत्र पर भाष्यकार लिखता है—

पत्नीमध्यापयेत्कस्मात् ? पत्नी जुहुयादिति वचनात् ।
न खल्वनधीत्य शक्नोति पत्नी होतुमिति ॥

पत्नी को वेदादि पढाना चाहिये, क्योंकि पत्नी अग्निहोत्र करे यह विधान पाये जाने से विना पढी पत्नी हवन यज्ञ करने के योग्य नहीं हो सकती। आगे और भी स्मृति है कि.—

पत्नी पुत्रः कुमारी वा शिष्यो वापि यथाक्रमम्।
पूर्वपूर्वस्य चाभावे विदध्यादुत्तरोत्तरः ॥

अर्थात् पत्नी, पुत्र, कुमारी शिष्य यथाक्रम पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तरोत्तर होमादि क्रिया करें। इन्हीं वातों पर **आश्व० गृ० अ० १-ख० ९** का भी प्रमाण है कि—**पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत् स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्य्यन्तेवासी वा ॥** विवाह हो जाय तवसे गृह्याग्नि का सेवन करना चाहिये। इस गार्हपत्य अग्निहोत्र को स्वयं पुरुष करे अथवा स्त्री पुत्री या शिष्य भी करे। पुनरपि—**दम्पती एव ॥ १७ ॥ गोभि० गृ० प्र० १ का० ४ गृहपतिस्तत्पत्नी तावुभौ दम्पती एव बलीन् हरयेयातामिति सम्बध्यते (चन्द्रकान्तः)** पतिपत्नी दोनों वलिवैश्वदेवादि क्रिया करें ॥

इति गृहमेधिव्रतम् ॥१८॥ गोभि० गृ० १।४॥ इत्येवमहरहः पञ्चानां महायज्ञानामनुष्ठानं गृहमेधिव्रतम्। गृहे ययोर्मेधो यज्ञो भवति तावुभौ गृहमेधिनौ दम्पती इति ब्रूमः। (चन्द्रकान्तः)

इस प्रकार प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करना यह गृहमेधी-दम्पती (पतिपत्नी) का व्रत है। जिनके घर में मेघ अर्थात् यज्ञ होता है उन दोनों को गृहमेधी दम्पती कहते हैं ॥ बस, यहां तो आचार्य ने कमाल किया ॥ ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और वलिवैश्वदेव ये पांचों महायज्ञों का अधिकार पति के साथ-साथ पत्नी को दे दिया! क्या अब भी कोई सनातनवैदिकधर्मावलम्बी ऐसी धृष्टता से कह सक्ता है कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत विहित नहीं? विना यज्ञोपवीत पञ्चमहायज्ञ कैसे किये जा सक्ते हैं? यदि करो मनु का वचन—

नह्यस्मिन्युज्यते कर्म यावन्मौञ्जी निबध्यते ॥

निषेधक—हाय, तुम तो सिद्ध कर रहे हो परन्तु इससे हमारा मनमाना सनातनधर्म उलट रहा है उसका क्या किया जाय?

विधायक—भाई जबसे मालूम पड़े तबसे सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना यही सच्चा सनातन धर्म है। वाकी तो 'सौ तुम्हारी राम दुहाई एक

हमारा उं उं' के लिये तो कोई उपाय नहीं हो सक्ता। अस्तु. चलिये आगे पूर्वमीमांसादर्शन में महात्मा जैमिनि क्या कहते हैं ?

स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात् ॥ अ० ६। पा० १। सू० १७

वचनात्तयोः सह क्रिया। एवं हि स्मरन्ति, धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्येति।......तत्र यागोऽवश्यं सह पत्न्या कर्तव्य इति ॥ (शावर भाष्य)

स्त्री पुरुष दोनों को एक कर्म के बोधक वचन पाये जाने से दोनों का एक साथ कर्म करने का विधान है। धर्म, अर्थ, और काम में स्त्री को पृथक् नहीं करना चाहिये ऐसी स्मृति है। अतः अवश्य पत्नी के साथ यज्ञ यागादि करना चाहिये। पुनः—

फलवतां च दर्शयति ॥२१॥ मी० अ० ६। पा० १॥

संपत्नी पत्या सुकृतेन गच्छतां यज्ञस्य धुर्य्ययुक्तावभूताम्। सञ्जानानौ विजहीताम्। अरातीर्दिवि ज्योतिरजरमारम्भेतामिति दम्पत्योः फलं दर्शयति। तस्मादप्युभौ अधिकृताविति सिद्धम् ॥

(शावर भाष्य) पति के साथ पत्नी सुकृत करती चले। दोनों यज्ञ के वाहक बन जाय। दोनों मिल मिलाकर आगे बढते रहें। स्वर्ग में अविनाशी ज्योति का दोनों आरंभ करें। इस प्रकार शास्त्र स्त्री-पुरुष दोनों को एक साथ कर्म करने का अधिकार देते हैं—नहीं, नहीं आज्ञा करते हैं। पुनरपि व्यङ्कटेश्वर मुद्रालय में प्रकाशित विक्रम-संवत् १९५० का पारस्कर गृह्यसूत्र का "पक्षादिषु स्थालीपाकसूत्रम्" के प्रकरण में पृष्ट ६२-६३-६४ पर बाह्यतः स्त्री बलिं हरति नमः स्त्रियै नमः पुंसे पर भाष्यकार श्री हरिहर लिखते हैं—"रात्रावग्निसमीपे भूमौ दंपती पृथक् शयीयातां प्रातः स्नात्वा सन्ध्यावन्दनानन्तरं प्रातर्होमं च निर्वर्त्यं" इत्यादि.

अर्थात् रात्रि में अग्नि के समीप भूमि पर दम्पती पृथक्-पृथक् शयन करें। और प्रातःकाल स्नान कर सन्ध्यावन्दन के बाद प्रात:कालिक होम करें। यहां दम्पती-पतिपत्नी दोनों के लिये सन्ध्यावन्दन तथा प्रातर्होम का विधान है। शङ्करदिग्विजयमें भी आया है:—

तत्राधिकारमधिगच्छति सद्वितीयः।
कृत्वा विवाहमिति वेदविदां प्रवादः ॥ सर्ग० २। श्लो० १४॥

अर्थात् विवाह करके परिणत स्त्री के साथ पुरुष को यज्ञादि कर्म में अधिकार प्राप्त होता है, ऐसा वेद के जाननेवाले आचार्यों का कथन है। यह सनातनियों का ही प्रमाणभूत शङ्करदिग्विजय ग्रन्थ भी हमारी तरफदारी कर रहा है। ऐसे सैंकडों प्रमाण मिल सक्ते हैं। जिसको चक्षु है वह तो शास्त्र-दर्पण में अच्छी रीति से देख सक्ता है किन्तु अन्धों के लिये आयना निकम्मा है।

निषेधक—क्या अब तुम हमको ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण दे सक्ते हो कि जहां स्त्रियों ने वेदादिपठन और सन्धावन्दन आदि क्रियाएं की हों ? हारीत आदि ने जो बात की है वह न जाने कौनसे कल्प की तथा किस शास्त्र के आधार से लिखी हुई है ? (कन्योप-निषेध० पृ० १९)

विधायक—ऐतिहासिक दृष्टान्त भी बहुत हैं और इसलिये हारीतादि स्मृति-सूत्रकारों ने जो विधान किये हैं वे सर्वथा प्रामाणिक हैं। प्रथम तो हमने वेदकालिक कौन-कौनसी स्त्रियां मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाएं बनी यह साथ मण्डल और ऋचा के बतलाया पुन: ब्राह्मणोपनिषदों में से **गार्गी मैत्रयी: सुलभा** आदि स्त्रियां नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी तथा ब्रह्मवादिनी थीं ऐसा प्रमाण मिलता है। उनमें से प्रथम दो स्त्रियों ने याज्ञवल्क्य मुनि के साथ शास्त्रार्थ किया और तीसरी सुलभा ने ब्रह्मवादी राजा जनक के साथ।

निषेधक—(स्वगत) जो स्त्रियां मन्त्रद्रष्टी हुईं उनके विषय में तो हमको चुप ही रहना पडता है। (प्रसिद्ध) सनातनी पण्डित यह कब कहते हैं कि स्त्रियों को बिलकुल पढानेका अधिकार नहीं है या वे स्त्रियां पढी न थीं ? वे तो स्वयं कहते हैं कि वेद छोडके शेष सर्वग्रन्थ, पुराण, इत्यादि पढनेका स्त्रियों को अधिकार है। और जब कि वह मैत्रेयी आदि स्त्रियां वेदाङ्गपुराणादि शास्त्रों में पूर्ण विदुषी थीं तब क्या असम्भव है कि उन्होंने पुराण , वेदान्तसूत्र इत्यादि के द्वारा ही शास्त्रार्थ किया हो। क्योंकि श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में भी वेद के बहुतसे विषय (वेदों के व्याख्यान, रूपान्तर से ज्यों के त्यों) आ गये हैं। क्या पुराण और वेदान्त सूत्रों में बहुत विद्या नहीं है ? (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २८)।

विधायक—शोक है आपकी ऐतिहासिक बुद्धि पर। जरा सोचो तो सही कि ब्राह्मण और उपनिषत्काल तो अत्यन्त प्राचीन है। वेदान्त के रचियता व्यास और भागवतादि अठारह पुराणों के रचयिता वोपदेव आदि का जन्म भी उस वक्त तो नहीं हुआ था फिर ब्राह्मणोपनिषदों में वर्णित स्त्रियों ने उनके बाद हुवे वेदान्त, भागवतादि: द्वारा कैसे शास्त्रार्थ किया ? "वेद छोडके वेद छोड़के" चिल्लाते रहते हो तो फिर ये लोपामुद्रा घोषा, अपालादि स्त्रियां यूरोप की सफ्रेजिसों की भांति सनातनियों के शिर पर मेख मारकर क्या यों ही वेदमन्त्रार्थ की द्रष्ट्री ऋषिकाएं हो गईं? शायद निषेधकजी

के इतिहासज्ञानानुसार यह संभव है कि उन ऋषिका-स्त्रियों ने यूरोप की सफ्रेजिसों (अधिकार मांगनेवाली) से बलात् अधिकार लेना सीखा हो और फिर ऋषिका पद मिला हो। वेदान्तदर्शन में ब्राह्मणोपनिषदों के प्रमाण आते हैं अत: सिद्ध है कि वेदान्त पीछ से बना। बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी, मैत्रेयी का याज्ञवल्क्य मुनि के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ था उसकी कथा आती है और वह शास्त्रार्थ उपनिषद् के भी पूर्ववर्ती वेदश्रुतिप्रमाणपरक ही होता रहा जिसको उपनिषत्कारों ने पीछेसे ग्रन्थरूप से लिख लिया। तब फिर किस बुद्धिमत्ता से कहा जा सक्ता है कि गार्गी, मैत्रेयी, आदि ने पुराण और वेदान्त पढकर शास्त्राथ किया होगा ! ! निषेधकजी का इतिहास-ज्ञान संसार में न जाने कैसी प्रथा डालेगा ! रामचन्द्र ने द्रोणाचार्य से सिखलाई अर्जुन की बाणविद्याद्वारा रावण को मारा, नृसिह ने शिवाजी के व्याघ्रनखद्वारा हिरण्यकश्यप को संहारा, जर्मन झेपलीन से सीखकर पुष्पविमान के बनानेवाले ने वह विमान बनाया, इत्यादि इत्यादि।। यदि उपर्युक्त बातें पागलदिमाग का एक चमत्कार माना जाय तो गार्गी मैत्रेयी का भी वेदान्त भागवतादि पढकर शास्त्रार्थ करना वैसा ही है। यदि आपका कथन मान लिया जाय तो भी 'वेदान्त का क्या अर्थ है ? वेदब्रह्म-विद्या-उपनिषत् आदिका जिसमें अन्त-अवशेष-उत्तरभाग आगया हो उसको कहते हैं 'वेदान्त'। उस वेदान्त के सूत्र-सूत्र को समझनेके लिये मूल वेदश्रुति का अभ्यास करना ही पडता है। उसके आश्रय के विना कुछ भी वेदान्त भाग समझ में नहीं आ सक्ता। यथा वेदान्तदर्शन में **'ईक्षतेर्नाशब्दम्' 'गौणश्चेन्नात्मशब्दात्' 'तन्निष्ठस्य मोक्षोप-देशात्' 'श्रुतत्वाच्च' 'मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते' 'तत्प्राक्श्रुतेच्च' 'भेदश्रुतेः'** इत्यादि पचासों सूत्रों में प्रसङ्ग पर श्रुतियां लगती रहती हैं तो पुन: इनकी अभ्या-सिनी स्त्रियां विना वेद पढे कैसे वेदान्तिनी बन सक्ती हैं ? जिन्होंने वेदान्तदर्शन को देखा है वे तो हमारे साथ सम्मत होंगे ही बाकी निषेधकजी जैसे को तो **न तु प्रति-निविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्** (अर्धदग्ध मूर्खजन के मन का समाधान कोई नहीं कर सक्ता) यह भर्तृहरिजी का कथन ही ठीक है।। 'ब्रह्मचारिणी' का अर्थ तो हमने उपर अच्छी प्रकार स्फुट कर दिया है। अब कहिये 'ब्रह्मवादिनी' किसको कहते हैं ?

निषेधक—तुम ही कह दो किसको कहते हैं ?

विधायक—अच्छा. पहले तो यह कहो कि 'ब्रह्म' का अर्थ पुराण और वेदान्तदर्शन होता है ऐसा आप कोई भी प्रमाण से बतला सक्ते हैं ?

निषेधक—(स्वगत) पूरे फसे (प्रसिद्ध) नहीं।

विधायक—तो ब्रह्म का अर्थ वेद होता हैं ऐसा जो अनेक प्रमाणों से ऊपर सिद्ध किया जा चुका है वह आपको भी मान्य है, ऐसा हम मान सक्ते हैं। अब ब्रह्म-

वादी किसको कहते हैं सो सुनिये। **ब्रह्म वेदान् वदति उपदिशति स ब्रह्मवादी। स्त्री चेद् ब्रह्मवादिनी।** अर्थात् जो वेदों को जाने वा उनका उपदेश करे वह ब्रह्मवादी और स्त्री हो तो ब्रह्मवादिनी। यही अर्थ उत्तररामचरित द्वितीय अङ्क में भी आया हुआ **ब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते।।** इस वाक्य पर वीरराघवकृत टीका में लिखा गया है। भला यह तो वतलाइये कि रामायणकालीन-जनकराजा के साथ शास्त्रार्थ करनेवाली सुलभा अपने हजारों वर्षों के बाद वने हुए वेदान्त और भागवतादि पुराणों को पढकर किस प्रकार ब्रह्मवादिनी बनी और शास्त्रार्थ करनेको गई? खण्डकजी! रामायणकाल और वेदान्त भागवतादि पुराणकाल के बीच में कितना वडा अन्तर है उसका आपने कभी ख्याल भी किया है? फिर भी शास्त्रार्थ करते समय वेदों के विना काम नहीं चल सक्ता, क्योंकि स्वतःप्रमाण रूप से उनका ही आधार देना लेना पडता है। द्वैत, अद्वैत आदि अनेकविध वादों के लिये **'द्वा सुपर्णा सयुज' 'पुरुष एवेदँसर्वम्'** इत्यादि अनेक मन्त्र लगाने पडेंगे और उनका अर्थ करना पडेगा। तभी सम्यक् निर्णय किया जा सकेगा। **ईशादि** कई उपनिषदें वेदऋचामय हैं जिनके पढने से भी वेदाध्ययन हो ही जाता है। किन्तु निषेधक विचारे और क्या समझे? वह स्वयं कलियुगमय हो गये हैं, इसलिये सब जमाना कलियुगी देख रहे हैं। अपने घर की शूद्र बनाई हुई स्त्री की ही कल्पना वह उन ब्रह्मवादिनियों में लगा रहे हैं। उन्होंने स्वयं भागवतपुराण भाषाटीका से और कुछ नहीं देखा फिर ब्रह्मवाद क्या और ब्रह्मवादी या वादिनी कौन? यह उनकी समझ में कैसे आ सक्ता है! राजा जनक ने जब सुलभा को पूछा कि तू कौन है? तब सुलभा ने कहा—

साहं तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥८३॥ । महाभा० शान्ति० अ० ३२१॥

इस श्लोक पर नीलकण्ठ की टीका—**तस्मिन्व्याख्यातप्रभावे कुले विनीता गुरुभिः शिक्षिता मद्विधे भर्तर्यसत्यप्राप्ते सति नैष्ठिकब्रह्मचर्यमाश्रित्य संन्यासं कृतवत्यस्मीत्यर्थः।** अर्थात् मैं प्रभावशाली क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई हूं और गुरुओं से मैंने शिक्षा पाई है। ब्रह्मचर्य की समाप्ति के समय मेरे योग्य पति नहीं मिलने से मैंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का आश्रय लेकर संन्यासव्रत को ग्रहण किया है।। यहां नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और (मुनि) संन्यासव्रत ये दो पद क्या बतला रहे हैं? साफ-साफ स्त्रियों का सम्पूर्णाधिकार। क्योंकि संन्यासधर्म सर्वोत्कृष्ट है और वह उत्तमाधिकारियों को

ही प्राप्त होता है। अस्तु, इन ब्रह्मवादिनियों के जीवन से यह भी सिद्ध हो गया कि विवाह-लग्न भी स्त्रियों के लिये फरजी नहीं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये स्त्रियां जीवनभर ब्रह्मवादिनी रहीं, और ऋतुमति होती हुई भी कौमार्यावस्था से कुमारी-ब्रह्मचारिणी मानी गईं। इसलिये ऋतुमति होने के पूर्व विवाह कर ही लेना चाहिये और न करने से **त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।** रजस्वला को देखकर माता पिता और ज्येष्ठ बन्धु नरक में जाते हैं यह सब बात कपोलकल्पित झूठी ठहर जाती है। यदि ऐसा ही धार्मिक फरमान उस समय होता तो गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि स्त्रियां राज्य और सामाजिक दण्डनियम से नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारण नहीं कर सक्तीं और नरक में पड़ने के भय से उनके पालक भी उनको बडी नहीं होने देते। किन्तु इन कपोलकल्पित वातों का उस समय स्वप्न भी कहां था? अन्यथा कन्योपनयननिषेध में लिखा है तदनुसार उन ब्रह्मचारिणियों के पितृगण सब नरक में सडते होंगे। हमारी राय में ऐसी बात बनानेवाले नरक में सडते होंगे और सडेंगे, न कि पितृगण।

निषेधक—तुम तो कहां-कहां की बातें ला रहे हो किन्तु हम तो यह जानते हैं कि जब कन्या हो तब ही उसका विवाह कर डालना चाहिये। "अर्थात् जब तक यह 'कन्या' संज्ञा (अवस्था) में हैं तब तक उसे न रज ही आता है, न कदापि उनकी रक्षा करना भी बन सक्ता है। और जब वह रजोवती होती है तब उसकी 'कन्या' संज्ञा हट जाती हैं और वह रजोवती कहलाती है तो समस्त धर्मशास्त्रों की यही अटल आज्ञा है कि रजस्वला होनेके पहिले ही अर्थात् कन्यावस्था में ही, उसका योग्य वर के साथ विवाह कर दे" (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २१)

विधायक—प्यारे भाई निषेधकजी! यों समस्त धर्मशास्त्रों का ठेका आप कृपा करके न लिया करें। अनेक ब्रह्मचारिणियों-ब्रह्मवादिनियों के दृष्टान्तों से आपके कपोलकल्पित शास्त्रों की आज्ञा सर्वथा निर्मूल हो जाती है। और जो आपने 'कन्या' शब्द का लक्षण किया 'जब वह रजोवती होती हैं तब उसकी कन्या संज्ञा हट जाती है" इत्यादि वह भी केवल दूषित है क्योंकि सत्य सनातन वेदविहित शास्त्र ऐसा नहीं कहते। स्वयं वेद भगवान् ने **'ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्॥'** इस अथर्व की ऋचा में, सायण के ही भाष्यानुसार, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती हुई अविवाहित, स्त्रीत्व को प्राप्त हुई, कन्या को स्वयंवरविधिपूर्वक युवा पति को मिलाने की आज्ञा दी हैं। ऐसी आज्ञा कभी दस या बारह वर्ष की बालकी के लिये नहीं घट सक्ती, प्राप्तयौवना कन्या को ही घट सक्ती है।

निषेधक—क्या बारह वर्ष की बडी लडकी भी बालकी गिनी जाती है?

विधायक—बारह तो क्या, देखिये सुश्रुत शारीरस्थान में क्या लिखा है—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते।
जातो न वा चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियं
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

अ० १०।४७-४८॥

अर्थात् पचीस वर्ष से कम उमर का पुरुष सोलह वर्ष से कम उमर की कन्या में गर्भाधान करे तो कुक्षि में ही वह गर्भ मर जाता है। यदि जन्म लेगा तो चिरकाल नहीं जीवेगा, और जीवेगा तो दुर्बलेन्द्रिय रहेगा, इस लिये छोटी बाला में गर्भाधान न करना चाहिये। यहां तो धन्वन्तरिजी ने सोलह वर्ष से कम उमर की कन्या को 'अत्यन्त बाला कह दिया। फिर हारीत लिखते हैं कि **षोडशवार्षिकं यावद् बाल्यं तावत्प्रवर्तते**॥ हारीतसंहिता। शा० अ० १। सोलह वर्ष की उमर तक बाल्यावस्था कही जाती है। **ऋतुस्नाता तु या शुद्धा सा कन्येत्यभिधीयते**। (पराशरमाधव-सिद्धान्त:) माधव के इस वचनानुसार जो शुद्ध ऋतुस्नाता हैं वहा कन्या कहलाती है। **'कन्या पञ्चदशाब्दा स्यात्' 'विंशत्यब्दा यदा कन्या' कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः** (महाभा० अनु० अ० ५१–२२) "१५ वर्षकी कन्या कहलाती है" "जब कन्या बीस वर्ष की होती है" और महाभारत में भी कहा गया हैं कि "जब तक मेरा कौमार अर्थात् ब्रह्मचर्य है तब तक मैं निःसंशय कन्या ही हूं" इत्यादि कई प्रमाणों से **कन्या** संज्ञा बडी उमर की रजस्वला स्त्री में सर्वथा घटती है। अर्थात् सर्व श्रौतस्मार्तस्थापित यही प्रामाणिक सिद्धान्त है कि **कन्या ह्यक्षतयोनिःस्यात्** अर्थात् जो अक्षतयोनि है वह कन्या ही है। यदि रजस्वला होनेसे कन्या संज्ञा मिट जाती है तो फिर स्वयं मनु ने लिखा है [और निषेधकजी ने कन्योपनयननिषेध पृष्ठ-२२ पर मानो अपने हाथ से ही अपना खण्डन करनेको उद्धृत किया है] कि:—

कामामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि॥ मनु० २।८९

ऋतुमति होने पर भी मरण पर्यन्त कन्या को घर में बैठी रक्खे किन्तु गुणहीन वर को कदापि न दे॥ यदि रजस्वला होनेके बाद उसका कन्यात्व नष्ट हो जाता है तो फिर ऋतुमती होनेपर भी यहां मनुजी ने 'कन्या' संज्ञा क्यों रक्खी? पुन:—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सति। मनु० २।९०

अर्थात् रजस्वला होती हुई कन्या तीन वर्षतक राह देखे, फिर समान वर को

वरे ।। यहां भी मनुजी ने ऋतुमती होती हुई को साफ-साफ 'कुमारी' अर्थात् 'कन्या' संज्ञा दी है । वसिष्ठस्मृति अ० १७ । ५९ ।। तथा महाभारत, अनु० अ० ४४ । १६।। में भी ऋतुमती को ही कन्या कहा गया है । संस्कृत साहित्य से कुछ भी परिचय रखनेवाले 'कन्या' शब्दकी व्याख्या वैसी कभी नहीं कर सक्ते जैसी कि निषेधकजी ने की है । शिशुपालवध काव्य के द्वितीयसर्ग में महाकवि माघ लिखते हैं—

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।।२०।।

इस श्लोक में—ककुद्मि की 'कन्या' रेवतीजी (बलदेवजी की धर्मपत्नी)के मुख में रहनेसे सुन्दर गन्धयुक्त हुई मदिरा से कृतसंसर्ग अपने मुख के आमोद को बाहर निकालते ऐसे बलरामजी ।। यहां विवाहिता होनेपर रेवतीजी को 'कन्या' लिखी गई है और उसके साथ बलरामजी की श्रृंगारचेष्टाएं बतलाई गई हैं जिससे सिद्ध होता है कि निषेधकजी ने कन्या शब्द का लक्षण अपना मनगढंत ही कर दिया है । उन्होंने समस्त शास्त्रों का तो क्या परन्तु एक का भी प्रमाण अपनी की हुई कन्या संज्ञा की पुष्टि में नहीं दिया , उन्हें तो अपनी वैलयुक्तियुक्त बातें गोकुलसमूह में करते रहना है । यदि रजोवती होते ही कन्या संज्ञा हट जाती तो सनातनियों के परमाचार्य व्यासदेव **कन्यायां जातः कानीनः** (कन्या से उत्पन्न हुआ बालक कानीन) कैसे कहलाते ? इसी प्रकार कुन्ती ने कन्या अवस्था में कर्ण को जन्म दिया इसलिये वह भी कानीनः कहलाया । सती शकुन्तला को राजा दुष्यन्त से भरत का गर्भ उस वक्त रहता है कि जिस वक्त वह कन्या थी और उसके पालक ऋषि कण्व आश्रम में नहीं थे अर्थात् उसकी उम्र कन्यात्वकालमें भी इतनी थी कि वह स्वयं अपनी बुद्धि से राजा दुष्यन्त को अपना प्रेम अर्पण कर सकी, उससे अपना गंधर्वविवाह कर सकी । ऋषि कण्व को आश्रम पर आनेसे मालूम पडता है कि शकुन्तला सगर्भा है, इससे वह प्रेमपूर्वक शकुन्तला को दुष्यन्त राजा के पास विदा करते हैं । क्या निषेधक जैसा ज्ञान कण्व को नहीं था ? उन्होंने शकुन्तला को इतनी बडी क्यों होने दिया ? फिर कुन्ती और सत्यवती आदिके मातापिता नरक के अधिकारी हैं या स्वर्ग के ? धन्य है कन्या संज्ञा का नया सनातनधर्म स्थापनेवाले निषेधक मिश्रजी को ! ! प्राचीनकाल की स्वयंवर व्यवस्था बतला रही है कि विवाहकाल के लिये रजोदर्शन या अदर्शन जरा भी उपकारक नहीं । **गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वा असमानार्षीं अस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत** ।। इत्यादि स्मृतिवचन, अक्षतयोनि, स्वन्यूनवयस्का, विद्याकुलशीगुणादि युक्ता कन्या के साथ वरने का विधान करता है । इससे सिद्ध हुआ कि उपर्युक्त लक्षण प्रायः सोलह वर्ष से कम उमर की कन्या में नहीं दिखाई देते । रामायण और महाभारत में सीता, दमयन्ती, और द्रौपदी के दृष्टांत

पाये जाते हैं और सुभद्रा,देवयानी, सावित्री, आदिके इच्छालग्न (choice marriage) के। यह सब बतलाता है कि प्राचीन काल में कन्या की संज्ञा उसकी उम्र देखकर नहीं लगाई जाती थी, उसका अविवाहितपन देखके लगाई जाती थी। और कन्यायें प्राय: उसी समय व्याहती थीं कि जब वे स्वयं अपने लिये योग्य पति की पसंदगी कर सकें। ऐसे प्रसंग पर **रूपयौवनशालिनीम्। स्त्रीगुणैर्युताम्। संप्राप्तयौवनाम्** जैसे विशेषणों का व्यवहार किया गया है जो कभी दश बारह वर्ष की बालकी के लिये नहीं हो सक्ता। महाभारत, शल्यपर्व, अ० ५४, में कहा है कि श्रीमती घृतव्रता-शाण्डिल्य की पुत्री, और श्रुतावती-भरद्वाज की पुत्री, जन्मभर ब्रह्मचारिणी रही थीं। क्या ये स्त्रियां रजस्वला नहीं हुई होंगी ?

निषेधक—अवश्य हुई होंगी। फिर (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २३ पर) क्यों लिखा गया है—**निर्णयसिन्धौ सम्बन्धतत्त्वे**—

कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥
तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥

अर्थात् "बारह वर्ष तक विना व्याही हुई कन्या के घरमें रहने से इस कन्या के पिता को ब्रह्महत्या लगती है इस लिये ऋतुमती होनेसे पहिले ही उस कन्या को विवाह दे"॥ अन्यथा **त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।** रजस्वला को देखकर मां, बाप, तथा भाई तीनों नरक में जाते हैं।

विधायक—इसके अनुसार तो कण्व, शाण्डिल्य, भरद्वाज तथा गार्गी, मैत्रेयी सुलभा, आदिके सब पितृगणों को ब्रह्महत्याएं लगी होंगी और वे विचारे नरक में चिल्लाते होंगे। सीता, दमयन्ती,कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि के मा बाप तथा भाइओं पर भी यही आपत्ति बरसी होगी ? सुभद्रा के भाई में तो श्रीकृष्ण और बलराम भी आ गये !!

निषेधक—(स्वगत) शिव, शिव, शिव ! यह तो बडी कमबख्ती हुई। ऐसी बातें कैसे मानी जा सक्ती हैं ? उन वचनों को नहीं मानते हैं तो सनातनधर्म में बाधा आती है और मानते है तो नाक कट जाता है, पूर्वजों की मिट्टी पलीत हो जाती है। यह तो ब्रह्मसंकट आ पड़ा क्या किया जाय ?

विधायक—(निषेधकजी को चुप देखकर थोड़ी देर के बाद) प्यारे भोले भाई ! यों क्षुब्ध न हुवे जाओ। जितने संस्कृत श्लोक दुनिया भर में हैं वे सब

शास्त्रों के प्रमाण हैं ऐसा मानने से तो बड़ी-बड़ी विप्रतिपत्तियां आ जाती हैं और इसलिये कहा करते हैं कि आर्ष अनार्ष का भेद समझकर निर्णय किया करो। एकदेशी ऊटपटांग बातों को मानते रहने से कभी सनातनधर्म की रक्षा नहीं होगी। कन्या के लिये ऊटपटांग ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न उक्तियां हैं तो ऐसी अवस्था में श्रुति तथा आर्ष स्मृति से विरोध न आवे वैसी बात स्वीकार्य हो सक्ती है। **महाभाष्य, अ० ८, में पतञ्जलि ने 'वृद्धकुमारीन्याय'** दिया है। यदि रजस्वला होते ही कुमारी संज्ञा हट जाती तो वह **वृद्धकुमारीन्याय** ऋषि न लगाते। इन सब बातों का निष्कर्ष जैसा कि महाभारत में व्यासदेव ने देवयानी तथा शकुन्तला के आख्यान में उनसे कहलाया है यही हैं:—

विद्धि मां भगवन् कन्यां सदा पितृवशानुगाम्।
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममानघ ॥

हे भगवन् ! मुझे नित्य पितृवश रहने वाली कन्या जानो। अतः हे अनघ ! आपके संयोग से मेरा कन्याभाव दूषित हो जाय। मतलब कि **अनूढायाः शतवयस्काया अपि कन्यात्वम्।** अविवाहिता सौ वर्ष की उमरवाली का भी कन्यात्व घट सक्ता हैं और ऐसा मानने से ही ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनीं, वृद्धकुमारी तथा स्वयंवर विधि से विवाहिता, इन सब की संगति हो सक्ती है। हमारे यहां जिसको कन्या या कुमारी कहते हैं उसको अंग्रेजी में (Virgin) 'वर्जिन' कहते हैं फिर वह अक्षतयोनि रहती हुई चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो जाय॥ कन्याविषयक हमारी सिद्धि में वेद भगवान् का एक और प्रमाण हम पेश करते हैं जिस पर सनातनियों के माननीय महाचार्य महीधर जी की टीका हमारे पक्ष का समर्थन करती है।

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥

यजु० अ० १७ मं० ९७॥

महीधर०—कन्या वहतुमिव वहति परिणयति वहतुर्भर्ता। यथा वहतुं पतिमेतवै प्राप्तुं कन्या अभिप्रवन्ते। कीदृश्यः कन्याः। अञ्जि भगमञ्जाना व्यक्तं योग्यं कुर्वाणाः अज्यतें व्यक्तीक्रियते स्त्रीपुंव्यक्तिर्येन तत् तदञ्जानाः कन्या यथा पतिं गच्छन्ति तथा यज्ञं घृतधारा गच्छन्ति ॥

"पति को प्राप्त करने के लिये कन्यायें जाती हैं । कैसी कन्यायें ? जिससे स्त्री व्यक्ति का चिह्न प्रकट होवे उस अञ्जि······अवयव का प्रकट करती हुई कन्या जिस प्रकार अपने पति को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार घृत की धारायें यज्ञ को प्राप्त होती हैं।" बस इससे बढ़कर और क्या कहा जा सक्ता है ? मन्त्र में बतलाये हुए कन्या के लक्षण दस या बारह वर्ष तक की लड़की में कभी नहीं घट सकते हैं। महीधर के मर्म को विद्वान् अच्छी प्रकार समझ सकते हैं—विशेष स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं ।

निषेधक—तब यह छोटी उमर का विवाह विधान क्यों निकला ?

विधायक—ऐतिहासिक परिवर्तन होने से जब मुसलमानी राज्य हुवा, और कुमारी कन्या का हरण आदि बहुत अत्याचार होने लगे, तब–'**विवाहोऽष्टमवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते**' ।। (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २४) '**अष्टवर्षा भवेद्गौरी**' इत्यादि अनेक-अनेक नवीन प्रमाण बनने लगे । कालातिक्रम से यह बात रूढ हो गई और अन्ततोगत्वा **शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी** शास्त्र से रूढि बलवती बन गई । परन्तु अब तो सर्वरक्षक न्यायी ब्रिटिश सरकार का राज्य है । सामाजिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता है अतः तिमिरावृत, अशेषक्लेशपरिपूर्ण, कण्टकाकीर्ण, संकुचित, अनार्ष, विकट पथ से भगवद्भास्करविस्फुट, निरतिशयअभ्युदयसंभृत, आर्यजनस्वीकृत, संस्कृत विस्तृत, अनादिश्रुत, श्रुति-पथ पर आ जाना चाहिये ।।

निषेधक—परन्तु मनुजी ने:—

त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥९।९४॥

अर्थात्–तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की हृदयप्रिया कन्या के साथ विवाह करे और यदि धर्म में बाधा आने का सम्भव हो तो चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करले ।। (कन्योप-निषेध-पृष्ठ २४) यह क्यों कहा ?

विधायक—यहां तो साफ **धर्मे सीदति** पद बतला रहे हैं कि आपद्धर्म का विधान है अर्थात् यदि (जैसे मुसलमान राज्यादि में बड़ी बड़ी बाधाएं आईं) धर्म का नाश होता हो तो ऐसा भी कर लें । यदि भोजन पानी के विना प्राण जाते हों तो आपके मत से भी शूद्र का खान पान विहित किया गया इससे यह थोड़ा ही सिद्ध होता है कि सब अवस्था में ऐसा करना चाहिये ।। बस यही आपद्धर्म का भाव लक्ष में रख कर दीर्घदर्शी मनुजी ने (क्योंकि यह श्लोक आपद्धर्म प्रकरण का है) विधान किया । यदि यह बात नित्य धर्म की मानी जाय तो अपने ही पूर्व वचनों से विरोध

आवे तथा वेद, आयुर्वेद, और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य तथा स्वयंवरप्रतिपादक अन्य प्रामाणिक इतिहास स्मृतियों में विप्रतिपत्ति पैदा हो जाय।

निषेधक—क्या वेद में से आप बडी उमर की [स्त्री के लग्न तथा स्वयंवर का विधान बतला सक्ते हैं ?

विधायक—क्यों नहीं सुनो—

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥

अर्थात्--प्रशंसीय श्रेष्ठगुणों से युक्त वधू को चाहनेवाले मनुष्य को कैसी स्त्री बहुत प्यारी लगती है ? (उत्तर) (यत्सुपेशा) जो सुन्दर रूपवती स्त्री (भद्रा) कल्याणी, सुख देने हारी (जनेचित्) पुरुषों में से (स्वयं) अपने आप (मित्रं) पति को (वनुते) वर लेती है। (सा) वैसी स्त्री पति को प्रिया लगती है॥ यहां इच्छापूर्वक वर को ग्रहण करनेवाली वधू कही गई है। इसी वेद आज्ञा पर प्राचीन काल के आर्यनरनारी इच्छालग्न करते थे। आजकल की मनगढंत उक्तियों से प्रचरित प्रजाविनाशक बाललग्न का स्वप्न भी उन्हें ज्ञान न था और तभी तात्कालिक भारतवर्ष स्वर्गोपम माना जाता था।

निषेधक—तब क्या अन्य स्मृति और पुराणों के वचनों को नहीं मानना चाहिये ?

विधायक—इसका उत्तर स्वयं स्मृतिकार देते हैं—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

अर्थात् जहां कहीं श्रुतिस्मृति तथा पुराणों का आपस में विरोध दिखाई पडे वहां सब से प्रथम श्रुति मान्य हैं और स्मृति तथा पुराणों के विरोध में स्मृति मान्य। महात्मा जैमिनि भी मीमांसादर्शन में कहते हैं कि—**विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यात् असति ह्यनुमानम्** ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३॥ वेद के साथ अन्य किसी शास्त्र का विरोध होने पर वेदसिवाय अन्य प्रमाण नहीं किन्तु विरोध के न होने दर प्रमाण हैं। बस, तो हमारे पक्ष में साक्षात् श्रुति भगवती खडी है फिर उसके सामने और कोई विरुद्ध प्रमाण कैसे चल सक्ता है ? वेद में से निषेधक एक भी प्रमाण अपनी पुष्टि के लिये नहीं दे सके यही उनकी निर्बलता है और इसलिये अन्य—वेदविरुद्ध चाहे कितनी ही मनगढंत बातें हों, वे सब जैमिनि के कथनानुसार मिथ्या हैं।

निषेधक—वेद तो हमने कभी पढा नहीं इसलिये क्या जानें ? अच्छा अब अन्य ऐतिहासिक दृष्टान्तों से दिखाओ कि ये ये स्त्रियां यज्ञादि कर्मकाण्ड करती थीं ?

विधायक—एवमस्तु । खोलो वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग० २० ।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यव्रतपरायणा ।
अग्नि जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥१५॥

अर्थात् रेशमीसाडी पहिनी हुई, प्रसन्न, और नित्यव्रत में परायण ऐसी कौशल्यां मन्त्रोंसहित अग्निहोत्र करती हैं। देखिये, यहां कौशल्या 'वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक' अग्निहोत्र करती दिखलाई है । फिर किष्किन्धाकाण्ड से वाली की स्त्री और बाद सुग्रीव से नियोग की हुई तारा के लिये आता है कि—

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी ।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥ स० १६-१२॥

विजय चाहनेवाली और वेदमन्त्र को जाननेवाली वह तारा स्वस्ति-अयन (स्वस्तिवादन शान्तिपाठ आदि वेदमन्त्रों से मङ्गल चाहना) कर के स्त्रियों के साथ शोकार्त हुई अन्तःपुर में दाखिल हुई । यहां भी तारा 'मन्त्रविद्' लिक्खी गई है । यदि उपनयन का अधिकार उसे नहीं था तो मन्त्र को जानना और पढना कैसे बन सक्ता है ? कन्योपनयननिषेध में दिया हुआ सुमन्तु का वचन—**नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म यावन्मौञ्जी निबध्यते** । जब तक यज्ञोपवीत न हो तब तक वेदोच्चारण न करे यह निषेधकजी की ही तलवार उनके गले में लटक रही हैं । अपि च सुन्दरकाण्ड सर्ग १४ में हनुमान्‌जी सीताजी को ढूंढते हुए कहते हैं कि—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥४९॥

इस निर्मलजलवाली नदी के तट पर सन्ध्या करने लिये सन्ध्यासमय को विचरती हुई सुन्दरी सीता अश्यमेव आवेंगी । यहां स्त्री लिये सन्ध्या करने का उल्लेख भी आगया !! इन उपर्युक्त ऐतिहासिक प्रमाणों ने हारीत, यम, मनु तथा गोभिलीय सूत्रों का स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत तथा तदनन्तर वेदादिपठनपाठन सहित पञ्चमहायज्ञों के विधायक वचनों का परस्पर एकमेल कर दिया । अब कोई किसी का विरोध नहीं । परन्तु स्वार्थी और अन्ध बराबर हैं इसलिये यदि वे न देख सकें तो शास्त्रों का और हमारा कोई दोष नहीं । पुनः जैसा गार्गी, मैत्रेयी, और सुलभा ने

यज्ञवल्क्य तथा जनक से शास्त्रार्थ किया था वैसा मण्डनमिश्र की पत्नी उभयभारती ने श्रीस्वामी शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। भला शङ्कराचार्य जैसे के साथ विना वेद पढे शास्त्रार्थ कैसे हो सक्ता था ?

निषेधक—'आपको यह अवश्य सिद्ध कर दिखलाना चाहिये कि फलाने-फलाने वेदमन्त्र या श्लोक-प्रमाण से उन मैत्रेयी आदि ने वेद पढा था, या स्त्रियों को वेद पढने का अधिकार है यदि,नहीं तो ऐसे निर्मूल प्रलापों से आलाप करना विद्वानों का काम नहीं' (कन्योपनयन निषेध पृष्ठ २९) उमयभारती–विद्याधरी ने वेद भी पढा था ऐसा कोई श्लोक या प्रमाण आप दें तो हम मानें, बाकी उनके समय में तो वेदान्त और पुराण थे इसलिये इनके द्वारा शास्त्रार्थ किया होगा।

विधायक—धन्य है आपकी विद्वत्ता की धृष्टता पर। वेदोपनिषद् को जाने दीजिये आपने तो अपना घर का नवीन इतिहास भी नहीं देखा भाला। हमने वेदमन्त्रों की स्त्री ऋषिकायें सप्रमाण बतला दी हैं फिर बारंबार प्रमाण मांगना तथा स्त्रियों के लिये वेद की मनाई करना मानो परमात्मा से विरोध करना है और वह अधम अनार्यता मानी जाती है। गार्गी, मैत्रेयी का भी समाधान हो गया है। अब रही उभयभारती। यदि इनके लिये जैसा आप प्रमाणभूत श्लोक मांगते हैं वैसा आपके ही मान्य पुस्तक में से हम बतला दें तो फिर क्या ?

निषेधक—बस फिर हम कुछ न कहेंगे (स्वगत) परमेश्वर करे वैसा कोई प्रमाण न मिले नहीं तो अनेक के साथ एक और भी थप्पड बैठेगी।

विधायक—अच्छा तो फिर खोलो आपके भी परमपूज्य महात्मा स्वामी शङ्कराचार्यजी का दिग्विजय जो उनके शिष्य माधवाचार्य ने रचा है उसके सर्ग ३में उभयभाती का वर्णन है।

सर्वाणि शास्त्राणि षडंगवेदान्
काव्यादिकान् वेत्ति परं च सर्वम्।
तन्नास्ति नो वेत्ति यदत्र बाला
तस्मादभूच्चित्रपदं जनानाम् ॥ शङ्करदिग्विजय०

वह बाला उभयभारती न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, पूर्वमीमांसा, वेदान्त ये छः शास्त्र, तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः अंग, तथा ऋग्, यजुस्, साम, अथर्व ये चारों वेद तथा काव्यादि सब कुछ जानती थी। ऐसा कुछ नहीं था जिसको वह उभयभारती न जानती हो अतः लोगों को बडा आश्चर्य

होता था । आंख खोलिये निषेधकजी ! आपने पढा **षडङ्गवेदान्** ? छः अंगों के साथ **वेदान्** अर्थात् एक वेद नहीं दो नहीं किन्तु सब वेद वह उभयभारती **वेत्ति** जानती थी ॥ कहिये, अब आप कैसे निग्रहस्थान में आ फसे हैं ? अपने हाथ से ही गाल पर थप्पड मारकर लज्जित बनें जिससे कि विना कुछ पढे लिखे ही शास्त्रों के गहरे जल में उतरने का साहस कभी न हो जाय अन्यथा ऐसी डूबती सी दशा हो जाती है । पीछे से भी मण्डनमिश्र का पराजय होने पर उभयभारती का श्रीशङ्कराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में वर्णन आता है—

अथ सा कथा प्रववृते स्म तयोरुभयोः परस्परजयोत्सुकयोः ।
मतिचातुरीरचितशब्दभरी श्रुतिविस्मयीकृतविचक्षणयोः ॥९॥६३॥

पश्चात् एक दूसरे को जीतने की उत्कण्ठावाले उन दोनों के शास्त्रार्थ में बुद्धि चातुर्य, शब्दगाम्भीर्य और श्रुतिप्रमाण आश्चर्यदायक थे ॥ अब भी क्या कुछ शेष रहता है ? सत्य देखा जाय तो मण्डन तथा उभयभारती का श्री शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ ज्यादातर वेदविषयक ही था क्यों कि उनके घर में नित्य इसी विषय की शंका उठती रहती थी जिसका उल्लेख भी शंकरदिग्विजय में है । यथा—

स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं किराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥
सर्ग० ४।६॥

शंकराचार्यजी जब मण्डनमिश्र का मकान पूछते हैं तब दासी जवाब देती है कि जिनके द्वार पर पिंजरे में बैठी हुई किरांगनाएं 'वेद स्वतःप्रमाण है या परतः-प्रमाण है' ऐसे वचन बोलती रहती हैं वह मण्डनमिश्र का घर जानो । जहां इस प्रकार वेदविषयक ही शास्त्रार्थ हो वहां यह कहा जाय कि उभयभारती वेद नहीं पढी थीं तो वह तो पागल की दलील हो सक्ती है !! परन्तु अन्धे को काना (one eyed) जो कुछ समझावें वह चल सक्ता है मात्र दोनों चक्षुवाले के सामने पोल खुल जाती है । **उत्तररामचरित** में भी एक प्रसङ्ग आता है जिससे स्त्रियों का वेद पढना प्रत्यक्ष होता है । द्वितीय अंक में वनदेवता आत्रेयी को पूछती है–**आर्ये आत्रेयि, कुतः पुनरिहागम्यते । किम्प्रयोजनो दण्डकारण्योपवनप्रचारः ॥** "आर्य आत्रेयि ! आपका यहां कहां से आगमन हुआ हैं ? दण्डकारण्य के उपवन में संचार का क्या प्रयोजन है?" आत्रेयी—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति ।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥३॥

अर्थात् इस प्रदेश में सामवेदान्तर्गत उद्गीथगान को जाननेवाले (**ओमित्युद्-गीथमुपासीत' इति परस्मिन्ब्रह्मणि उद्गीथदृष्टिं कुर्वन्त इत्यप्यर्थः** अर्थात् ओ३म् यह उद्गीथ की उपासना करे इस प्रकार परब्रह्म में उद्गीथदृष्टि करनेवाले) अगस्त्य आदि मुनिगण वसते हैं उनसे वेद–निगमान्तादि विद्या पढने के लिये वाल्मीकि के पास से मैं यहां आई हूं ॥ मतलब कि, इस प्रकार सांगोपांग वेद पढने के लिये स्त्रियां ऋषिमुनियों के पास आया करती थीं ।

निषेधक—बस, अब तो वहुत हुई । हम इन प्रमाणों से लाचार हुए जाते हैं । हमारी भूल हमको दिखाई पडती है और मिथ्या दुराग्रह करने से हमको अब लज्जा आती है । अब जिज्ञासावृत्ति से दो चार प्रश्न और करके हम भी विधायक वन जायंगे । देखिये कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २५—

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरौ वसन्संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ मनु० अ० २।१६४

इस श्लोक का कन्योपनयनसंस्कार, स्तवक २, पृष्ठ १५ में, ऐसा अर्थ किया हुआ है कि "इस प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे-धीरे वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढाते चले जावें" ॥ (कन्योप–निषेध) "वाह ! इसमें आप अपनी सत्यता वा शास्त्रविज्ञता तो ठीक चमका रहे हैं किन्तु साथ ही अपने गुरु स्वा० दयानन्दजी की शास्त्रविज्ञता वा सत्यता दमका रहे हैं !! इसमें "ब्रह्मचारिणी कन्या" यह अर्थ आप कौन से अक्षरों में से निकालते हो? इस श्लोक में जब कन्या का लेश मात्र भी नाम नहीं है और 'द्विजः' शब्द साफ-साफ लिखा भी पडा है तो फिर कन्या, कन्या, पुकारकर क्यों भटकते हो ?"

विधायक—अजी निषेधकजी ! इसका समाधान तो जहां **'जातिं तु बादरायणः'** आदि मीमांसा के प्रमाण देकर पुंल्लिग निर्देश से स्त्री का भी ग्रहण हो जात्ता है ऐसा बतलाया है उस स्थानपर अच्छी प्रकार किया गया है । क्या इतने में ही भूल गये ? घडी-घडी में भूलना ब्राह्मणों का धर्म नहीं, किन्तु शूद्रों का है । जैमिनि

और व्यासदेव (वादरायण) की भांति गुरु स्वामी दयानन्दजी की शास्त्रविज्ञता वा सत्यता दमकती ही है और उसके प्रताप से हम भी चमका रहे हैं। अच्छा, तो भी लीजिये एक और प्रमाण उपर्युक्त बात की पुष्टि में देते हैं ?"

तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीयाताम् ॥१५॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३

इसपर सनातनियों का ही भाष्यकार श्री चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार **तावुभौ** का अर्थ **दम्पती** करता है ॥ अर्थात् पति-पत्नी दोनों ब्रह्मचारी, क्षारलवणरहित भोजन करके भूमिपर सोवें। अब वहां निषेधकजी ने अपने ही गुरु चन्द्रकान्त को हमारीभांति जाकर डांटना चाहिये कि "वह क्या ? यहां साफ 'ब्रह्मचारिणौ' शब्द है और वह पुंल्लिग 'ब्रह्मचारिन्' शब्द का प्रथमा का द्विवचन है तो फिर इसमें से 'दम्पती' अर्थ कैसा निकाला ? इस वाक्य में स्त्रीलिङ्ग 'ब्रह्मचारिणी' या उसका द्विवचन 'ब्रह्मचारिण्यौ' का लेश मात्र भी उल्लेख नहीं हैं फिर 'दम्पती' पतिपत्नी दोनों पुकार कर क्यों भटकते हो ?' 'तो भाई आपको यही उत्तर मिलेगा कि **पुमान् स्त्रियां** इस व्याकरण सूत्र से तथा **जातिं तु बादरायण:** आदि जैमिनिसूत्र से पुंल्लिग निर्देश होता हुआ भी स्त्रीपुरुष दोनों का ग्रहण होगा। इसी प्रकार **संस्कृतात्मा** और **द्विज:** का अर्थ करते **आत्मत्व** तथा **द्विजत्व** जातिविशिष्ट स्त्री पुरुष दोनों का ग्रहण करना होगा अन्यथा स्त्री द्विज न बने तो **उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्** 'द्विज अपने समान वर्ण की भार्या से विवाह करे' यह खुद मनुजी के ही वाक्य में बडा विरोध आ जाता है ॥ हमने उपर अनेक प्रमाणों से बतला दिया है कि वेद से लेकर अर्वाचीन काल तक स्त्रियां भी सब कर्मकाण्डों के साथ वेदाध्ययन करती रहीं। अब जिस प्रकार लड़कों को वेदादि पढाने के लिये उपाध्याय, आचार्य, आदि होते थे उसी प्रकार लडकियों के लिये भी पदवीधारी स्त्रियां होती थीं इस बात को **अष्टाध्यायी** का **इङश्च** ३। ३। २१ ॥ सुत्र सिद्ध कर रहा है। इसपर महाभाष्य में लिखा है— **इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष्। इङश्चेत्यत्रापादाने स्त्रियामुपसङ्ख्यानं कर्तव्यं तदन्ताच्च वा ङीष्वक्तव्यः। उपेत्याऽधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया** ॥ देखिये, इस उदाहरण में 'उपाध्यायी' वा 'उपाध्याया' उस स्त्री का नाम है जिसके पास जाकर लडकियां वेद पढें और वह भी किस प्रकार? **उपेत्याधीयते**—"उपनीतहोकर" यह तात्पर्य हुआ और पाया गया कि कन्यायें भी उपाध्यायी के पास वैसे ही उपनीत (जनेऊधारी) होती थीं जैसे लडके उपाध्याय के पास। स्त्रीप्रत्ययप्रकरण में और भी प्रमाण आया है यथा **अष्टाध्यायी अ० ४। १ ४९** सूत्रपर **आचार्यादणत्वं च** ॥ में कौमुदीकार लिखता है **आचार्यस्य स्त्री**

आचार्यानी पुंयोगइत्येव । आचार्या स्वयं व्याख्यात्री । अर्थात् आचार्य की पत्नी आचार्यानी कहलायगी किन्तु स्वयं वेदादिविद्या पढानेवाली व्याख्यात्री आचार्या कहलायगी । इससे भी सिद्ध हुआ कि जैसे लड़कों के गुरुकुल में आचार्य होता है वैसे लडकियों के लिये स्वयं व्याख्यात्री **'आचार्या'** होनी चाहिये । आचार्य का लक्षण मनुजी ने ऐसा किया है कि—

उपनीय तुः य शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ अ० २।१४०॥

अर्थात् जो द्विज, शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढावे उसको आचार्य कहते हैं । (कल्प–यज्ञविधि, रहस्य–उपनिषद्) । इस श्लोक में जैसा आचार्य का लक्षण है वैसा पुंल्लिग निर्देशजात्यविशेष से स्वयं व्याख्यात्री आचार्य को भी समझना चाहिये यथा—

उपनीय तु या शिष्यां वेदमध्यापयेद्द्विजा ।
सकल्पं सरहस्यं च तामाचार्यां प्रचक्षते ॥

जो द्विजा शिष्या का उपनयनकरके……वेद पढावे उसको आचार्या कहते हैं।। पुनः पतञ्जलिजी **अनुपसर्जनात् ॥ अष्टाध्यायी०** ४ । १। १४ इस सूत्र के भाष्य में ऐसा लिखते हैं कि **आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला ब्राह्मणी । काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी । काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी ।** इससे सिद्ध है कि स्त्रियां भी गुरुकुल में जाकर आपिशलादि वेदशाखा पढ कर **आपिशला ब्राह्मणी** कहलाती थीं और काशकृत्स्नी-वैदिक मन्त्रों वा कर्मों का मीमांसा शास्त्रपढकर **काशकृत्स्ना ब्राह्मणी** वनती थीं । अहा हा! इतने-इतने आर्ष प्रमाण उपस्थित होते हुए भी शूद्रा बनाई और मनाई हुई माता से उत्पन्न होने वाले स्वयं बुद्धिशून्य होकर भी स्त्रियों के लिये अनधिकार की बातें करें यह उन पण्डितंमन्यों की क्षुद्रता और शूद्रता का ही परिचय दिलाता है ।

निषेधक– परन्तु व्यास ने शारीरक सूत्रों में–**संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च । अ० १ पा० ३ सू० ३६** तथा **श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च । १ । ३ । ३८ ॥** स्त्री और शूद्र के लिये वेद का श्रवण अध्यध्यन का निषेध किया है उसका क्या जवाव ? (कन्योपनयननिषेध पृष्ठ १७)

विधायक—प्रथम तो उन सूत्रों में स्त्रियों का कोई जिक्र नहीं और न उनके लिये निषेध की बात है । बाकी शूद्र तो उसको समझना चांहिये कि जिसको पढाते

हुए भी कुछ न पढ सके और अधम संस्कारी ही रहे ॥ जो जडबुद्धि, दुष्ट, और अधम संस्कारयुक्त हो उसको ही शूद्र कहते हैं और ऐसों के लिये निषेध होना ठीक भी है। किन्तु मात्र जन्म या लिङ्ग से व्यास जैसे विद्वान् कभी निषेध न करते क्यों कि यों करने से व्यास का अपना ही खण्डन होगा जैसा कि **जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः। महा० वनपर्व.** व्यास मत्सगन्धा-धीमरी से तथा पराशर (व्यास के पिता) चाण्डाली से पैदा हुए। तो फिर वे दोनों पिता पुत्र शूद्रजात्युत्पन्न होते हुए वेद के अधिकारी कैसे बने ? अतः व्यास ने योग्यता को लक्ष में रखकर अधिकार अनधिकार माना हैं। पहिले स्त्री और पुरुष दोनों अपने-अपने पृथक् यज्ञोपवीत पहिनते थे आज शास्त्रानभिज्ञ पण्डितंमन्यों मे स्त्रियों के जनेऊ उतार लिये और पुरुषों को ही दो (डवल) पहिना दिये।

निषेधक—इसके लिये कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २७ पर निर्णयसिन्धु का हवाला देकर बतलाया है कि **'यज्ञोपवीते द्वे धार्ये'** अर्थात् यज्ञोपवीत दो पहनने चाहिये। और उत्तरीय वस्त्र न हो तृतीय भी पहनना चाहिये।

विधायक—बस, आपने अब भी वही निर्णयसिन्धु का गधापुंछ पकड रक्खा है जिसको अभी तक छोडते ही नहीं। ये लोगों ने जब स्त्रियों के जनेऊ उतार लिये तो पुरुषों के गले में फसाने के लिये ऐसा वैसा कुछ तो विधान करना ही चाहिये। उत्तरीय वस्त्र न होने पर तृतीय और धोती न होने पर चतुर्थ जनेऊ ही पहिनकर काम चलाया करे ऐसा लिखा होता तो भी कौन उनका हाथ पकडने जाता ? यह सब मध्यकालिक लीला है। देखिये, पारसी लोगों में आज दिन तक पुरुषों के साथ स्त्रियां भी **कस्ती** (यज्ञोपवीत के जैसा धर्मचिह्न) पहनती चली आती हैं। ये लोग मूल आर्यप्रजा की ही शाखा है जो इरान में जाकर वसी थी। इरान का नाम ही उन्होंने आर्य शब्द पर से रक्खा है। उनके धर्मपुस्तक का नाम **झन्दावस्ता** है जो वैदिक छन्दः और अवस्था परसे ही लिया गया है। झन्द भाषा में छ का झ हो गया अतः छन्दोवस्था का झन्दावस्ता हुआ। इस पुस्तक में आर्यजाति की ही प्रशंसा है और आर्य बनने का ही कहा गया है। चार वर्णों के लक्षण भी एक से हैं। जैसे हम लोग यज्ञयागादि करते हैं वैसे वे भी करते हैं और उनकी 'अगियारियों' (हमारी यज्ञशाला) में आतश (अग्निहोत्र) कायम जलता रहता है जिसमें स्त्री पुरुष दोनों हुतद्रव्य डालते हैं। अन्य संस्कार भी बहुत मिलते जुलते हैं। इस प्रकार पुराने आर्य लोग-पारसियों की कस्ती सदरा, आदि धार्मिक क्रियाओं में स्त्री पुरुष का समानाधिकार पाये जाने से हम स्त्रीपुरुषों की भी प्राचीन वैदिक आर्य मर्यादा वैसी ही स्पष्ट प्रतीत होती है जैसी श्रुति स्मृति व कल्पादि आर्ष ग्रन्थों से सुविहित है। तथापि धन्य है ये पारसी

लोगों को जिन्होंने अनेक ऐतिहासिक कष्ठ सहन करते हुए भी धर्म-कर्म में स्त्री-पुरुषों के समानाधिकार की प्राचीन मर्यादा सुरक्षित रक्खी है। परन्तु अफसोस है कि पुरा कल्प से वैदिक धर्मानुयायी द्विज कहलाती आर्य जाति ने अपनी कारणभूत मातृशक्ति को शूद्रा व्रात्या बना दिया जिसका परिणाम पुरा कल्प की उच्च अवस्था से गिरते-गिरते आज शूद्रों की भांति दीनता हीनता तथा पराधीनता में आ पडा। मनुजी ने ठीक ही कहा है कि—**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः** जहां स्त्रियों की पूजा (अधिकार और सत्व का सत्कार) नहीं होती है वहां सब क्रिया अफल हैं। स्त्रियों के साथ शूद्र सा व्यवहार रखना सर्वथा उनकी अपूजा ही है और उसका फल मानव-धर्मानुसार हिन्दुजाति पा भी रही है और पावेगी भी। अस्तु। यज्ञोपवीत दो पहिनो कि चार पहिनो, हमको कोई तकरार नहीं, स्त्रियां भी समान अधिकार होने से उतने ही पहनेंगी।

निषेधक—किन्तु तुम हिन्दुओं को ह क्यों कहते हो तुम्हारी आर्यसमाजियों की स्त्रियां भी तो विना यज्ञोपवीत शूद्रासी रहती हैं तो शूद्रत्व की विप्रतिपत्ति तुम्हारे लिये भी समान है।

विधायक—यह माना कि अभी-अभी कई एक नामधारी समाजी हैं जा ज्ञाति-जाति के रगडों में फसे हुए हैं और **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयम्** के अन्ध प्रवाह में भीरुपन से बहे जा रहे हैं इसलिये वे थोडा सा **दम्भदृश्य** से अतिरिक्त अपनी स्त्रियों को उन ज्ञातिजाति के शूद्रत्व के संस्कार से विमुक्त नहीं कर सक्ते हैं। वे भी विचारे क्या करें? कई वर्षों के सडे हुए हिन्दूपन के असर से मुक्त होना सहल नहीं इसीलिये वे अपने आत्मिक बल (moral courage) को दवा रहे हैं। प्रभु इनमें वल दे। तो भी आज आर्यों के कन्याआश्रमों में सैकडों कन्यायें यज्ञोपवीत धारण कर रही हैं और कई सच्चे आर्यों की सच्ची भार्या भी है जो क्षुद्र ज्ञातिजाति या लोकापवाद के भय संकोच को छोडकर, उपनीत हो, द्विज बन, गृहमेधीव्रत का पालन कर रही हैं। निर्वलता होनी या माननी अलग बात है किन्तु स्त्री कन्योपनयन के सिद्धान्त में आर्यों का मतभेद नहीं इसलिये शनैः शनैः ठीक व्यवस्था हो ही जायेगी।

निषेधक—किन्तु एक यह भी लोकापवाद है कि स्त्रियां प्रतिमास रजोवती होती हैं अतः भ्रष्ट मानी जाती हैं। तो फिर उन्हें यज्ञोपवीत कैसे पहिनाया जा सकता हैं? क्यों कि स्त्री की अशुद्धि से वह अशुद्ध हो जाता है।

विधायक—यह दलील तो डूबते समय तृण पकडने जैसी है। यदि प्राचीन काल में ऐसी मान्यता होती तो हारीत, यम, मनु, तथा सूत्रकार स्त्रियों को सब

अधिकार देते ही नहीं। वेदमन्त्रों की द्रष्ट्री स्त्रियां वनती ही नहीं, अपि च गार्गी, मैत्रयी, सुलभा प्रभृति अनेकानेक विदुषी, ब्रह्मवादिनी तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी होने पाती ही नहीं ।। रजोवती होने मात्र से स्त्रियां भ्रष्ट हैं तो फिर हम सब द्विज भी उनसे बढकर भ्रष्ट हैं। स्त्री रजउत्सर्ग करती है तो क्या पुरुष वीर्योत्सर्ग नहीं करता? इतना ही नहीं किन्तु जिस रज को हम अशुद्ध कहते हैं उसी रज से हमारा शरीर भी तो बना है फिर उस अपवित्र, भ्रष्ट, रजोवीर्यसंयुक्त शरीर पर जनेऊ हम पुरुष कैसे धारण कर सकते हैं ? क्या सनातन धर्म में स्त्री तुलसी आदिकी कंठी नहीं पहनती हैं ? यदि वह स्नान के बाद अशुद्ध नहीं रहती तो जनेऊ भी नहीं रहेगा। इन तीन दिनों में कर्मकांड नहीं होंगे जैसे देव पूजा नहीं हो सक्ती है।

निषेधक—अब हमारे पास कोई विशेष प्रश्न नहीं, न हम पिष्टपेषण की धृष्टता करना चाहते हैं। अब आप कृपया कोई पुराने साहित्य में से ऐसा वर्णन बतला दें कि जिसमें किसी स्त्री विशेष को प्रत्यक्षतः उपनयन धारण की हुई बतलाया गया हो।

विधायक—यदि हम बतला दें तो फिर आप आर्यसमाज के 'कन्योपनयन विधि' के सिद्धान्त के चुस्त हिमायती बन जायंगे ? या 'रक्ख करवत बन्दा तो मोची का मोची' की मिसल के माफिक ही रहेंगे।

निषेधक—नहीं, नहीं, अब हमको पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि आर्यसमाज का कथन सर्वथा ठीक हैं। अभी तक हम 'कन्योपनयननिषेध' जैसे ऊटपटांग एक देशी ग्रन्थों की बातों पर ही मूंछे मरोडते फिरते थे किन्तु अब भ्रम मिट गया।

विधायक—अच्छा, तब कहो आपने कवि बाण का नाम सुना है ?

निषेधक—जी, हां, नाम तो सुना है।

विधायक—उन्होंने **कादम्बरी** नामक साहित्योत्कृष्ट ग्रन्थ लिखा है वह आपने पढा है ?

निषेधक—सुना है कि वह एक बडा क्लिष्ट ग्रन्थ है। हमने पढा नहीं किन्तु उस की बडी भारी प्रशंसा जरूर सुनी है।

विधायक—अच्छा, तो देखो कादम्बरी (निर्णयसागर–मुद्रालय में मुद्रित) पृष्ठ २६३ पर **महाश्वेतावर्णन**। वहां लिखा है:—

अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूखजालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम् ।

अर्थात् ईश्वर की कृपा से मिला हुआ, चूडामणि चन्द्र के किरणों का ही मानो

मण्डल वनाया हो ऐसा ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को पहिनकर महाश्वेता ने अपनी काया पवित्र की हुई थी ।। देखिये यह प्रत्यक्ष दृश्य, साफ-साफ स्त्री की काया पर यज्ञोपवीत का सुन्दर चित्रण !! अब संतोष हुआ ? साहित्य क्या है मानो समाज का एक जीता जागता चित्र है । महाश्वेता के अन्य वर्णन के साथ उसकी काया पर रहा हुआ ब्रह्मसूत्र का वर्णन मानो आर्य स्त्री का उपनयनाधिकार का मूर्तिमन्त दृश्य है । आओ, अब वैदिक धर्म की सेवा करने को उद्यत हो जाओ, और उसकी जय मनाओ ।

निषेधक—जय, जय, वैदिक धर्म की जय । आर्यसिद्धान्तों का अभ्युदय । हमने गलती की कि वेदादिसच्छास्त्रों का **सत्यार्थ-प्रकाश** करने काले महर्षि स्वामी दयानन्द तथा उनके पीछे उसी प्रकाश में चलनेवाले आर्यसमाजियों की कदर आजतक नहीं की । किन्तु अब हमारा समाधान हो गया और मन का प्रायश्चित भी हो गया ।

विधायक—हम आपकी सच्चाई पर धन्यवाद देते हैं । **मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्** इस वचनानुकूल जो महात्मा होते हैं वे सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में सदा सर्वदा उद्यत रहते हैं और **मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्** इस वचन के अनुसार जो दुष्टात्मा होते हैं वे दुराग्रह, स्वार्थ तथा आत्मा के खून में लग रहते हैं आपकी सत्यनिष्ठा पर प्रभु का आशीर्वाद उतरेगा । देखिये, अब आपको स्पष्ट प्रतीत होगा कि जो कन्योपनयननिषेध पृष्ठ २८ पर लिखा गया है कि "स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से भी कोई ब्रह्मवादिनी हुई ? नियोगिनी हों तो आश्चर्य नहीं" यह प्रलाप सर्वथा मिथ्या है । स्वामी दयानन्द सर्वथा शुद्ध निष्पाप और अखण्ड बालब्रह्मचारी थे । उन्होंने नियोग को तो प्राचीन प्रथानुसार आपद्धर्म का एक सिद्धान्त मात्र बतलाया, किन्तु नियोग का यदि सच्चा असली विधान तथा अमली प्रचार भी किया हो तो उन्हीं **व्यासदेव** ने जिनको प्रत्येक सनातनधर्मी शिर झुकाता है । यदि नियोग सनातनधर्मियों की दृष्टि से व्यभिचार या पाप है तो व्यास अव्वल नंबर का व्यभिचारी या पापी माना जायेगा जिसने स्वयं माता सत्यवती के कथन से अपने दोनों भाई चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य की विधवा स्त्रियों में (अतः अपनी भावजों में) नियोग से पाण्डु तथा धृतराष्ट्र को पैदा किया ।

निषेधक—हां, इतना ही नहीं किन्तु एक दासी में विदुर को भी उत्पन्न किया।

विधायक—इस स्मृति के लिये आपको धन्यवाद । बाकी स्वामी दयानन्द ने तो वेद, स्मृति तथा उन्हीं व्यासदेव जैसे आप्त ने अमली नियोग किया, उनके जीवनादिकों को पढकर मात्र अपने पुस्तक में यह विचार बतलाया कि जब नीति की पूर्णपराकाष्ठा पर समाज पहुंचे तब आपद्धर्म समझकर व्यासादि की भांति नियोग करना चाहिये (अन्यथा नहीं) । और वह भी स्त्री और पुरुषों के बीच में ही । किन्तु सनातनधर्मियों

के दूसरे परम पूज्याचार्य यजुर्वेदभाष्यकार महीधरजी ने तो गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे इत्यादि मन्त्रों में घोड़ों से स्त्रियों का सम्बन्ध (नियोग ?) कराया है इसका सनातनियों के पास क्या उत्तर है ? कांच के मकान में रहते हुए किसी लोहे के दुर्ग में रहनेवालों पर कंकर फेंकना मूर्खता और धृष्टता ही है। महर्षि स्वामी दयानन्द ने तो आर्यसमाज स्थापना करके सच्चे पुराकल्प के वैदिक धर्म का उद्धार किया और कलियुगी युगान्तरवाद को उडा दिया जिससे फिर सत्ययुग की झांई नजर आ रही हैं। उनके प्रताप से जहां लडकों के लिये अनेक गुरुकुल खुले हैं, वहां लडकियों के लिये भी जालन्धर-कन्याश्रम, ठट्टा कन्या-ब्रह्मचर्याश्रम तथा अनेक कन्या-पाठशालायें और कन्या-गुरुकुल खुले हैं जिससे खण्डित आश्रमहर्म्य की पुन: नींव डाली गई है और सच्चा द्विजत्व का निर्माण (building) हो रहा है। कई ब्रह्मवादी ब्रह्मचारियों के साथ ब्रह्मवादिनी ब्रह्मचारिणियां भी विद्युत्प्रभा सी निकल रही हैं और सुलभा, धृतवती, श्रुतावती, गार्गी, आदि की जीवनज्योति जगाने की कोशिश कर रही हैं। अपि च, तिमिराकुल आर्यकुल को पुन: कीर्तिकान्त्युज्ज्वल कर रही हैं। सत्यवती सी आर्य कुमारी ने पंजाब युनिवर्सिटी की शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपना वेदादिक ज्ञान का पूरा परिचय दे दिया है और ब्रह्म वेदान् वदति सा ब्रह्मवादिनी प्रत्यक्ष बनकर ऋषि दयानन्द की फतह पुकार दी। अब अधिकार देने लेने की बात कहां रही ? सहस्रकार भास्कर का प्रत्यक्ष प्रकाशाकर होते हुवे उनके अस्तित्व के विषय में आशंका कैसे उपस्थित हो सक्ती है। प्रत्यक्ष प्रमाण में विवाद क्या ? बस, यह ब्राह्मणश्रुति-मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद को स्मरण रक्खो। प्रथम माता-स्त्री-शक्ति। उसको प्रशस्ता, धार्मिकी तथा सुसंस्कृता बनाओ। उसको उपनयनादि संस्कारों से द्विजत्व दो। शाखा पर फल का आधार है, लता पर फूल का मदार है, वसुधा का पौदा पर उपकार है। कारणगुणपूर्वकाः कार्यगुणा दृष्टाः। आज की कन्या भविष्य की माता है। उनको उपनीत करो, वेदवित् करो, संस्कार-शोधित करो, ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व जाति-विशिष्ट करो तभी यह देश सच्चे द्विज-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य विभूषित धीमान्, धृतमान् तथा श्रीमान् होगा। यावन नामक हिन्दुस्तान में से पुन: ब्रह्मावर्त्त, भारतवर्ष, आर्यस्थान होगा, अभ्युदय, नि:श्रेयस् का निर्माण होगा, नन्दनवनोपम उद्यान, स्वर्गारोह का विमान, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सोपान तथा जगत्कल्याण का सुसन्धान होगा। इत्योउम् शम्॥

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य**—(संस्कृत हिन्दी वा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित) —प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५-००।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग अप्राप्य है। द्वितीय भाग मूल्य २५-००

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्र-सूची-सहित। ४०-००

४. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्यायकृत। ११-१३ काण्ड ३०-००। १४-१७ काण्ड २४-००; १८-१९ वां काण्ड २०-००; बीसवां काण्ड २०-००।

५. **माध्यन्दिन—(यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण। २५-००

६. **गोपथ ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों से अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। मूल्य ४०-००

७. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेद-विषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। मूल्य ३०-००

८. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कट माधव कृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। व्याख्याकार—श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। उत्तम-संस्करण ३०-००, साधारण २०-००।

९. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या**—युधिष्ठिर मीमांसक मूल्य २-००

१०. **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १५-००

११. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा**—लेखक पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय। बढ़िया जिल्द २०-००, साधारण १६-००।

१२. **वैदिक-पीयूष-धारा**—लेखक श्री देवेन्द्रकुमारजी कपूर। चुने हुए ५० मन्त्रों की प्रतिमन्त्र पदार्थ पूर्वक विस्तृत व्याख्या, अन्त में भावपूर्ण गीतों से युक्त। उत्तम जिल्द १५-००; साधारण १०-००।

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

१३. बौधायन-श्रौत-सूत्रम् (दशपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण कृत भाष्य सहित (संस्कृत) ४०-००

१४. दर्शपूर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन भाषार्थ सहित । २५-००

१५. कात्यायनगृह्यसूत्रम्—मूलमात्र १५-००

१६. संस्कार-विधि—शताब्दी संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट । मूल्य लागतमात्र १२-००, राज-संस्करण १५-०० । सस्ता संस्करण मूल्य ५-२५, अच्छा कागज सजिल्द ७-५० ।

१७. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन मन्त्रों के पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित । यु० मी० मूल्य ३-०० सजिल्द ४-०० । मूलमन्त्रपाठमात्र ०-७५

शिक्षा-निरुक्त-व्याकरण-विषयक ग्रन्थ

१८. वर्णोच्चारण-शिक्षा—ऋ० द० कृत हिन्दी व्याख्या मूल्य ०-६०

१९. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षा-सूत्र ५-००

२०. निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्—केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्यविरचित एक मात्र मलयालम लिपि में ताडपत्र पर लिखित दुर्लभ प्रति के आधार पर मुद्रित । आरम्भ में उपोद्घात रूप में निरुक्त-शास्त्र विषयक संक्षिप्त ऐतिह्य दिया गया हैं (संस्कृत) । सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधिः । उत्तम कागज, शुद्ध छपाई तथा सुन्दर जिल्द । मूल्य १००-००

२१. निरुक्त-समुच्चय—आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत) । सं—युधिष्ठिर मीमांसक । मूल्य १५-००

२२. अष्टाध्यायी—(मूल) शुद्ध संस्करण । मूल्य ३-००

२३. धातुपाठ—धात्वादिसूची, शुद्ध संस्करण । मूल्य ३-००

२४. अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः (संस्कृत)—डा० विजयपाल विद्यावारिधि । मूल्य ५०-००

२५. वामनीयं लिङ्गानुशासनम्—स्वोपज्ञ व्याख्यासहितम् । ८-००

२६. अष्टाध्यायी-भाष्य—(संस्कृत तथा हिन्दी) श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत । प्रथम भाग २४-००, द्वितीय भाग २०-००, तृतीय भाग २०-०० ।

२७. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु । प्रथम भाग १०-००, द्वितीय भाग १०-०० ।

२८. **The Tested Easiest Method of Learning and Teaching Sanskrit (First Book)**—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत 'विना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि' भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वालों के लिये यह आधिकारिक पुस्तक है। कागज और छपाई सुन्दर, सजिल्द। मूल्य २५-००

२९. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या, यु० मी०। प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-००, तृतीय भाग २५-००

३०—**उणादिकोष**—ऋ० द० स० कृत व्याख्या, तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित। अजिल्द १०-००, सजिल्द १२-००

३१. **दैवम् पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्**—लीलाशुकमुनि कृत। १०-००

३२. **भागवृत्तिसंकलनम्**—अष्टाध्यायी की प्राचीन वृत्ति। ६-००

३३. **काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर। मूल्य १५-००

३४. **संस्कृत-धातुकोश**—पाणिनीय धातुओं का हिन्दी में अर्थ निर्देश। सं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १०-००

अध्यात्म-विषयक ग्रन्थ

३५. **आर्याभिविनय (हिन्दी)**—स्वामी दयानन्द। गुटका सजिल्द मूल्य ४-००

३६. **Aryabhivinaya**—English translation and notes (स्वामी भूमानन्द) दोरङ्गी छपाई। अजिल्द ४-००, सजिल्द ६-००

३७. **विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य सहितम्)**—पं० सत्यदेव वासिष्ठ कृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य (४ भाग)। प्रति भाग १५-००; पूरा सेट ६०-००।

३८. **श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्**—श्री पं० तुलसीराम स्वामी कृत व्याख्या सहित। मूल्य ६-००

नीतिशास्त्र-इतिहास-विषयक ग्रन्थ

३९. **शुक्रनीतिसार**—व्याख्याकार श्री स्वा० जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती। विस्तृत विषय सूची तथा श्लोक-सूची सहित। उत्तम कागज, सुन्दर छपाई तथा जिल्द सहित। मूल्य ४५-००

४०. **विदुरनीति**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित। मूल्य २०-००

४१. **सत्याग्रह-नीति-काव्य**—आ० स० सत्याग्रह १९३९ ई० में हैदराबाद जेल में पं० सत्यदेव वासिष्ठ द्वारा बिरचित। हिन्दी व्याख्या सहित। मूल्य ५-००।

४२. **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत अप्राप्य। नया संस्करण छप रहा है।

४३. **संस्कृत व्याकरण गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि**—लेखक—डा० कपिलदेव शास्त्री एम० ए०। सजिल्द १५-००

४४. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—इस वार इस में ऋषि दयानन्द के अनेक नये उपलब्ध पत्र और विज्ञापन संगृहीत किये गए हैं। इस वार यह संग्रह चार भागों में छप रहा है। प्रथम दो भागों में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन आदि संगृहीत हैं। तीसरे और चौथे भाग में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को भेजे गये पत्रों का संग्रह है। प्रथम भाग—३५-००, दूसरा भाग ३५-००, तीसरा भाग ३५-००, चौथा भाग ३५-००

४५. **विरजानन्द-चरित**—लेखक—पं० भीमसेन शास्त्री एम० ए०। नया परिवर्धित और शुद्ध संस्करण। मूल्य ३-००

४६. **ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत-साहित्य को देन**—लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय एम० ए०। सजिल्द १५-००

४७. **ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास**—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। नया परिशोधित परिवर्धित संस्करण। मूल्य ४०-००

४८. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इस बार पूना प्रवचन मूल मराठी से अनूदित एवं बम्बई प्रवचन सहित तथा विविध सूचियों, बढ़िया कागज और जिल्द से युक्त। मूल्य ३०-००

४९. **दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह** १०-००। **दयानन्द प्रवचन संग्रह** १०-००

५०. **कन्योपनयन-विधि**—'कन्योपनयन-निषेध' का खण्डन। महाराणी शंकर शर्मा। मूल्य ६-००

५१. **सत्यार्थप्रकाश**—३५०० टिप्पणियों और १४ विविध प्रकार के परिशिष्टों सूचियों के सहित १४०० पृष्ठ। सजिल्द ३०-००

दर्शन-आयुर्वेद-विषयक ग्रन्थ

५२. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या। व्याख्याकार—युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग—मूल्य ४०-००; द्वितीय भाग ३०-००; तृतीय भाग ५०-००; चौथा भाग यन्त्रस्थ।

५३. **नाडी-तत्त्वदर्शनम्**—श्री पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ। ३०-००

रामलाल कपूर ट्रस्ट

बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरियाणा) १३१०२१